सुलभ-साहित्य माला * छत्तीसवाँ पुष्प

शरत्-साहित्य

शुभदा



अनुवादकर्ता—

रूपनारायण पाण्डेय

सोल एजेण्ट—

हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर (प्राइवेट) लिमिटेड, मुम्बई

प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी, मैनेजिंग डायरेक्टर
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर (प्राइवेट) लिमिटेड,
हीराबाग, बम्बई ४

पहली बार
दिसम्बर, १९५६

मूल्य डेढ़ रुपया

मुद्रक—
रघुनाथ दिपाजी देसाई,
न्यू भारत प्रिंटिंग प्रेस,
६, केलेवाडी, गिरगाँव, बम्बई ४

निवेदन

'शुभदा' शरद्बाबूका प्रारम्भिक उपन्यास है। यह लिखा तो गया था सन् १८९८ में, परन्तु प्रकाशित हुआ सन् १९३८ के जूनमें, कोई ४० वर्ष बाद, जब कि उनका स्वर्गवास हो चुका था। स्वयं उनके हाथकी लिखी हुई प्रतिके मुखपृष्ठके संकेतोंके अनुसार २० जूनसे लेकर २६ सितम्बर सन् १८९८ तकके बीचमें इसकी रचना हुई थी*। उस समय उनकी अवस्था २२ वर्षकी थी।

उस समय बासा, अभिमान, और ब्रह्मदैत्य नामके तीन उपन्यास और भी लिखे गये थे जिनका अब तक कहीं पता नहीं लगा कि वे उनके मित्रोंने कहाँ खो दिये। 'पाषाण' नामकी एक कहानी भी उनके मामा सुरेन्द्रनाथ गांगुलीने खो दी।

श्री नरेन्द्रदेव लिखित जीवनीके अनुसार बोझा, काशीनाथ, अनुपमाका प्रेम, छवि, बड़ी बहिन, चन्द्रनाथ, हरिचरण, देवदास और बाल्यस्मृतिके बाद शुभदाका लिखना शुरू किया गया था।

शरत्साहित्यके पाठकोंने उक्त सब रचनायें पढ़ी हैं। उनके बादकी लिखी हुई होनेके कारण यह नहीं कहा जा सकता कि 'शुभदा' बिलकुल

---

* शुभदाके पहले संस्करणमें उसके प्रकाशकने उक्त मुखपृष्ठका फोटू प्रकाशित किया है, जिसमें ये तारीखें दी हुई हैं।

कच्चे हाथोंकी रचना है और उसमें शरत् साहित्यकी विशेषता नहीं है। फिर भी जान पड़ता है कि अपनी अन्य नारी चरित्रोंके समान वे सुभदाके अथवा ललना आदिके चरित्रोंको अधिक सजीव बनानेके लिए इसमें संशोधन परिवर्तन करना चाहते थे और इसलिए उन्होंने इसे प्रकाशित नहीं होने दिया। परन्तु फिर समय नहीं मिला और दूसरी नई नई रचनाओंमें लगे रहनेके कारण यह काम न हो सका।

बस सुभदाके सम्बन्धमें अब हमें और कुछ नहीं कहना है। यह पाठकोंके हाथमें है। अनुवादके सम्बन्धमें इतना ही यथेष्ट है कि इसे पं रूपनारायणजी पाण्डेयने किया है।

—प्रकाशक

शुभदा

१

गंगाके भीतर गर्दन तक पानीमें खड़ी कृष्णप्रिया महराजिनने आँख-कान मूँदकर तीन डुबकी लगानेके बाद पीतलकी कलसीमें जल भरते-भरते कहा—भाग्यमें जब आग लगती है तब इसी तरह लगती है।

घाटपर और भी तीन-चार औरतें नहा रही थीं, वे सब आश्चर्यसे महराजिनके मुँहकी ओर ताकने लगीं। झगड़ालू और लड़ाका स्वभावकी महराजिनसे साहस करके कोई बात पूछने या उसकी किसी बातको काटने या उसका प्रतिवाद करनेकी हिम्मत कोई भी नहीं करती थी। और फिर उस समय जो स्त्रियाँ घाटपर थीं, वे सब महराजिनसे उम्रमें छोटी थीं।

महराजिनने फिर कहा—सही कहती हूँ बिन्दा, आदमीके भाग्यमें जब आग लगती है तब इसी तरह लगती है।

जिस भाग्यवतीको लक्ष्य करके यह बात कही गई, उसका नाम बिन्ध्यवासिनी है। बिन्दो बड़े आदमीकी लड़की है, बड़े घरकी बहू है। इस समय अरसे बापके घर आई है।

बिन्दोने देखा, बात उसीसे कही गई है, इसलिए साहस पर भरोसा करके उसने पूछा—क्या है बुआजी?

महरानिनने कहा—इसी हारान मुखर्जीकी बात याद आ गई। भगवान् कैसे उन लोगोंको पैर रखकर कुचल रहे हैं।

बिन्दुवासिनी समझी कि हारान मुखर्जीके दुर्भाग्यकी बात हो रही है। वह भी सुनकर दुःखित हुई। लगभग एक महीना हुआ, हारान मुखर्जीका पाँच-छः सालका लड़का मर चुका है। उसी घटनाका खयाल करके बिन्दोने कहा—भगवान् छीन लें तो उसमें मनुष्यका क्या वश ! फिर जन्म और मृत्यु किसके घरमें नहीं होते बुआजी !

बिन्दोकी बातका मतलब कृष्णप्रिया अच्छी तरह समझ नहीं पाई। कुछ देर बाद कह उठी—आह, महीना डेढ़-महीना पहले एक लड़का जरूर गुजर गया है, लेकिन यह बात नहीं है बिन्दो, यह बात नहीं है। मरना-जीना भगवान्‌के ही हाथमें है, यह तेरा कहना ठीक है, मगर यह—शायद तूने कुछ सुना नहीं बेटी !

बिन्दो कुछ नहीं कह; केवल उनके मुँहकी ओर ताकती रही।

कृष्णप्रियाने फिर कहा—हारान मुखर्जीके बारेमें तूने शायद अभी कुछ नहीं सुना !

बिन्दो—उनके बारेमें और क्या सुननेकी बात हुई !

महरानिन बोली—आह ! वही तो कह रही हूँ बेटी कि भगवान् जब मारते हैं, तब इसी तरह मारते हैं। किन्तु उस अभागे मर्दके लिए तो कष्ट नहीं होता कष्ट होता है उस सोनेकी प्रतिमा बहूकी बात याद करके, अभागिनने इस बूढ़ेके पल्ले पड़कर एक दिनके लिए भी सुख नहीं पाया।

बिन्दो महरानिनका मुँह जैसे ताक रही थी, वैसे ही ताकती रही। उसकी समझमें कुछ नहीं आया। जिस मतलबसे कृष्णप्रिया मूल बात छिपाये रखकर ऊपरके डाल-पत्ते फैला रही थी, वह मतलब पूरा हो गया। घाटपर जितनी सुननेवाली थीं, उनमेंसे किसीके भी विस्मय और कुतूहलकी सीमा नहीं रही। हर एक मनमें मनमें यह सोचने लगी कि हारान मुखर्जीकी ऐसी क्या बात हो सकती है जिसे वे नहीं जानतीं, और गाँवके सभी लोग जानते हैं !

बहुत देर तक सोच-विचारकर बिन्दोने कहा—बुआजी, वह बात क्या मैं सुन नहीं सकती !

महराजिन—क्यों नहीं सुन सकती बेटी ! लेकिन यह तो कोई सुखकी बात नहीं—इसीसे कहनेको जी नहीं चाहता । जब समाल आता है, तभी कलेजा फटने लगता है । भाह, भगवान्‌ने ऐसी स्त्रीके भाग्यमें भी इतना कष्ट लिखा है ।

" काहेका कष्ट बुआजी ! "

" कष्ट क्या एक तरहका है ! कितने तरहके कष्ट, कितनी तरहकी बिथा (व्यथा) हैं, सो तुम लोगोंसे कहाँ तक कहूँ ! "

" तो भी कुछ सुनें न बुआजी ! "

" ना, अभी रहने दो । कुछ भी छिपा नहीं रहेगा, सभी सुन पाओगी—और सुना भी है लोगोंने । कुछ पहले और कुछ पीछे—तुम भी सब सुन पाओगी । "

" तुम्हीं कहो न ! "

" ना ना, अब न कहूँगी । मैंने सोच लिया है कि अब किसीकी किसी बातमें न रहूँगी । "

बिन्दोने हँसकर कहा—बुआजी, हम क्या तुम्हारी गैर हैं ! और फिर क्या तुमसे कुछ झूठ बोलनेको कहती हैं !

" पर कैसे कहूँ ! अभी तो गंगाजलके भीतर खड़ी होकर कह चुकी हूँ कि अब किसीकी किसी बातमें नहीं रहूँगी । "

कलहप्रिया कुष्णप्रिया महाराजिनके चले जानेपर सभी औरतें एक-दूसरेका मुँह ताकती रह गईं । कोई कुछ नहीं समझा । विशेष बात यह थी कि किसीने आज तक महराजिनको कभी कोई बात दबा जाते नहीं देखा—परपंच उन्हें बहुत प्रिय था । स्नान समाप्त होनेपर सभी अपने अपने घरको चल दीं । बिन्दो घर आकर गीली धोती बदलकर अपनी माके पास गई ।

माने कहा—बिन्दो, इतनी देर तक पानीमें रहना ठीक नहीं । बीमार पड़ गई तो फिर क्या होगा, तू ही बता !

' और क्या होगा, दो दिन भाग लूँगी । "

बिन्दोकी माने हँसकर कहा—यही सीधी बात है, इसके लिए चिन्ता क्या है ।

" मा, हारान मुखर्जीके यहाँ और क्या हुआ है ! "

"और क्या होगा ?"

"आज घाटपर कृष्णा बुआकी बातोंके ढंगसे मालूम हुआ कि उन लोगोंके यहाँ कोई नई दुर्घटना हुई है। तुमने कुछ नहीं सुना ?"

"नहीं। बुआने क्या कहा ?"

"उन्होंने कहा कि हमारे मुखर्जीके घरवालोंको भगवान् जैसे सिरपर पैर रखकर झुमाये दे रहे हैं। लेकिन उस कलमुहे मर्दके लिए तो कुछ नहीं होता, कष्ट होता है सोनेकी प्रतिमा बहूके लिए। इतना ही कहा, और कुछ नहीं बताया। कहती हैं, अब पराये परपंचमें नहीं पड़ूँगी।"

"महाराजिनको इतने दिन बाद धर्मका ज्ञान पैदा हुआ है।"

"मा, तुम क्या सचमुच कुछ नहीं जानतीं ?"

"नहीं।"

"तो आज मैं दोपहरको उनके घर जाऊँगी।"

"क्यों जायगी ? क्या दुर्घटना हुई है, यह जानने के लिए ?"

"हाँ—"

"तू क्या पागल हुई है ? जो बात उन्होंने नहीं कहनी चाही, वही बात पूछने तू जायगी ?'

"वह कौन ?'

माने कुछ इधर उधर करके कहा—वही कृष्णा महाराजिन।

"कृष्णा महाराजिन क्या कोई आदर्श ही है कि वह जो नहीं करेंगी, वह किसीको नहीं करना चाहिए ?

"इन सब मामलोंमें तो वह एक तरहसे आदर्श ही हैं।"

' हा होंगी, मगर मैं जाऊँगी।'

"पराई बातोंमें न पड़ोगी तो क्या कोई हर्ज है ?"

"अच्छा मा, एक आदमी अगर डूब रहा हो तो यह कहकर कि 'पराई बातसे क्या मतलब, उसे क्या बचाना न चाहिए ?"

"तू तो उन्हें बचाने नहीं जा रही है बिट्टो ?"

"कौन डूब रहा है, यह मालूम हो तो अवश्य बचाने जाऊँगी।"

बिन्दोकी मा कुछ देर चुप रहकर बोलीं—बिन्दो, तुम्हें उनके घर जानेकी जरूरत नहीं है। हारान मुकर्जी आदमी अच्छा नहीं है। तुम्हारे बापसे उनकी शत्रुता भी है। तुम्हारा क्या उन लोगोंके घर जाना देखनेमें अच्छा लगता है?

"हारान मुकर्जी अच्छे आदमी नहीं हैं, यह मैं जानती हूँ, लेकिन मैं तो उनके पास नहीं जा रही हूँ। उनकी स्त्रीके पास जानेमें क्या दोष है? मुझे निश्चय जान पड़ रहा है कि उनपर कोई मुसीबत आ पड़ी है। हम पास-पड़ोसके होकर अगर इस समय उनकी ओरसे आँख फेरे रहें तो मेरी ससुरालमें कोई मेरा मुँह नहीं देखेगा।"

"अघोरनाथ (बिन्दोका पति) ने क्या यह कह दिया है कि तू माइके-मोहल्ले यह देखती घूमे कि किसपर क्या मुसीबत पड़ी है, जो मुकर्जीके घरकी खबर न लेने पर वह तेरा मुँह न देखेंगे? और मैं जो तेरी मा होकर तुझे मना कर रही हूँ, यह क्या तेरे सुनने या माननेके योग्य नहीं है?"

"मा मुझे जाना ही होगा।"

"जाकर क्या सुनेगी? हारान मुकर्जीका क्या हुआ है, यह बात घरका कोई आदमी नहीं जानता।"

"फिर तुमने कैसे जाना?"

"तेरे बापसे सुना है।"

"तो फिर बताओ, क्या बात है?"

"नन्दी बाबूकी तहबीलसे रुपए खर्च कर डाले हैं, इसीसे उन्होंने हारानको पकड़ा दिया है।"

"नन्दी बाबू कौन?"

"बागनपाड़ाके जमींदार। इन्हींकी कचहरीमें हारान मुकर्जी नौकर थे।"

"कितने रुपये चुराये हैं?"

"लगभग दो सौ रुपए।"

"किसीने जमानत नहीं दी?"

"कौन देता भला? गाँवमें तुम्हारे बापूजीको ही सब जानते-मानते हैं और केवल वही जमानतदार हो सकते हैं, लेकिन उन्हें तो उस मामलेको

अपना बाबू बना रखा है। उसने एक बार उनसे जमानत देनेके लिए कहा भी पर उन्होंने मंजूर नहीं किया।

बिन्दोने बहुत देर तक चुप रहकर कुछ सोचा, फिर कहा—दोपहरको एक बार मैं उन लोगोंके यहाँ जाऊँगी। जबसे आई हूँ, तबसे एक बार भी बहूको देखने नहीं गई।

बिन्दोकी मा विस्मित हुई और कुपित होकर बोली—यह सब जान-सुनकर भी जाओगी!

बिन्दोने वैसे सहज और स्वाभाविक भावसे गर्दन हिलाकर 'हाँ' कहा, उससे माता फिर कुछ कह नहीं सकीं। कुछ देर चुप रहकर बिन्दोने फिर कहा—अरे उनके यहाँ जानेसे किसीकी कोई हानि नहीं है। मैं कहती हूँ मा कि मर्दोंका झगड़ा औरतों तक न पहुँचना ही अच्छा है।

दिन चढ़ आया देखकर मा घरका काम करने उठ गई। जाते समय बोलीं—वह सुनेंगे तो बहुत खफा होंगे।

"मैं ऐसे जाऊँगी कि वह न सुन पावें।"

"निश्चय सुन पावेंगे।"

"तुम सुनाओगी तभी सुनेंगे।"

"लेकिन सुनकर बहुत नाराज होंगे।"

बिन्दोने अन्यमनस्क भावसे कहा—बाप-मा सन्तानपर खफा होते हैं और फिर भूल भी जाते हैं। इसके लिए तुम चिन्ता न करो मा।

२

इस स्थानका नाम हलदपुर है। यह गाँव किस जिलेमें है, उसका नाम लेकर किसीको भी कष्ट नहीं देना चाहता। कारण इस स्थानमें किसीको कभी जाना नहीं पड़ेगा। यहाँ देखने-सुनने लायक कुछ भी नहीं है। मगर जो बहुत ही जाननेका कौतूहल हुआ तो मेरा लिखा विवरण पढ़कर जितना समझ सकें उतना समझ लें।

सुना है, इस गाँवमें पहले अनेक धनी लोग रहते थे और यह सम्भव भी है। कारण, एक तो यह गंगाजीके ऊपर बसा है; उसपर बहुत दिनोंके दो-चार पुराने टूटे-फूटे शिव-मन्दिर बेत-वन और जंगली लताओंके बीच आज छिपे हुए मौनव्रतधारी योगीकी मूर्तिकी तरह दिखाई देते हैं। पक्के घाटवाले सूने तालाबके बीच उगे हुए तृणको चरते विचरते हुए दो-एक गाय-बछड़े भी देख पड़ते हैं। यह सब देखकर यह अनुमान होता है कि इस गाँवकी यह दशा हमेशा नहीं रही। किन्तु इस समय केवल दस-बीस घर ब्राह्मणों और कायस्थोंके हैं पचास साठ घर किसानों और छोटी जातिवालोंके हैं चारों ओर जंगल है और उसीके बीच कदाचित् दो-चार आदमियोंके आने-जानेको एक पगडंडी है।

इसी गाँवमें हारानचन्द्र मुकर्जीका घर है। घर खस्ता और पुरानी ईंटोंका बना है। ऊपरके तल्लेमें दो और नीचे चार-पाँच कोठरी हैं। चारों ओर थोड़ेसे साग, दो-चार फलोंके पौधे, दो-एक बेलके वृक्ष और दो-तीन आमके पेड़ हैं। एक केलेका वृक्ष भी है। यही मुखोपाध्याय महाशयकी पुश्तैनी घर और पार्थिव सम्पत्ति है।

हलदपुरसे एक मील दूर बामुनपाड़ा गाँव है। वहींके जमींदार नन्दी बाबूकी जमींदारी कचहरीमें मुहर्रिरी नौकरी करते हैं। बीस रुपए महीना तनख्वाह मिलती है। इसीसे उनकी गिरिस्ती मजेमें चलती थी। लेकिन अब उससे पूरा नहीं पड़ता—हमेशा तंगी, सदा अभाव बना रहता है।

उनके घरमें पोष्यवर्ग भी अनेक हैं। स्त्री है, दो लड़के हैं, दो लड़कियाँ हैं, एक विधवा बड़ी बहन है। अर्थात् बंगालियोंके घरमें साधारणतः जैसा रहता है, वैसा ही उनके यहाँ भी है। जब वह महीना पूरा होनेपर बीस रुपए लाकर स्त्रीके हाथमें देते थे, तब उनके परिवारमें आजकलकी तरह नित्य गरीबी, नित्य अभाव किसीने नहीं देख पाया, कम से-कम इसकी खबर किसीको नहीं हुई। स्त्री और बहन, दोनों मिलकर कायदेसे, सुचारुरूपसे गिरिस्तीका सब धन्धा खेती थीं। अब वह भी करती नहीं हैं और घरकी तंगी और अभाव भी कि तरह दूर नहीं होता। आज खाना नहीं है, आज चावल-दाल नहीं है, आ ईंधन न होनेसे रसोई नहीं बन सकी। नित्य यह नहीं है, वह नहीं

संकटमें पड़कर मुखर्जीने एक असत् उपाय निकाला; अर्थात् मालिककी तहवीलमेंसे थोड़ा थोड़ा हाथ साफ करने लगे। विश्वासी हारान बाबूपर पहले किसीने सन्देह तक नहीं किया। किन्तु यह उपाय अधिक दिनों तक नहीं चला। क्रमशः ज़मींदार बाबूको सन्देह होने लगा। सन्देह जब गहरा हो उठा, तब ज़मींदारने एक दिन खाता, रोकड़-बही वगैरह देखना चाहा। खाता देखनेपर उसमें अनेक गलतियाँ, बहुत गोलमाल निकला। साथ ही चोरी भी पकड़ी गई। हारान बाबू अबतक बहुत-से रुपए उड़ा चुके थे। ज़मींदार भगवान लच्छी दयालु और धर्मात्मा आदमी थे। उन्होंने हारान बाबूको बुलाकर पूछा—कितने रुपए तुमने चुराये हैं ?

“ सो नहीं जानता। ”

“ जानते नहीं ? खाता-पत्र देखनेसे जान पड़ता है तीन हज़ारसे ऊपर चुराये हैं। इतने रुपये क्या किये ? ”

“ खर्च हो गये। ”

“ खर्च तो हो गये, लेकिन तुमने चोरी क्यों की ? ”

“ बीस रुपएमें खर्च पूरा नहीं पड़ता, इसीसे चोरी करनी पड़ी। ”

बीस रुपयेमें अबतक, इतने दिन, तुम्हारा काम चलता रहा, अब न चलनेका कोई कारण मेरी समझमें नहीं आता। खर यह चाहे जो हो, तुमने मुझसे यह क्यों नहीं कहा कि अब बीस रुपएमें तुम्हारा निर्वाह नहीं होता ? ”

“ कहनेसे क्या आप मुझे अधिक तनख्वाह देते ? ”

“ शायद दे देता लेकिन इसे जाने दो। तुमने जितने रुपये लिए हैं, उनमेंसे आधेके लगभग रुपए भी अगर तुम लौटा दो तो मैं तुमको छोड़ दे सकता हूँ। ”

“ किस तरह दूँगा ? मेरे पास तो कुछ भी नहीं है। ”

“ तुम्हारे कोई ज़मीन, बाग वगैरह हो तो बेच डालो। ”

“ केवल एक दमका घर है, वही बिकवा दीजिए। और कुछ नहीं है। ”

“ तुम्हारी स्त्री और लड़के-बाले कहाँ रहेंगे ? ”

"पेड़के तले।"

भगवान बाबू बहुत देर सोचते रहे। इसके बाद हारान मुखर्जीके मुँहकी ओर गौरसे देखकर बोले—तुम्हारी आँखें इतनी लाल क्यों हैं?

"यह मैं कैसे जानूँ!"

तब हारान मुखर्जीको विदा करके सरिश्तेके और एक आदमीको बुलाकर नन्दी बाबूने कहा—तुम हारान मुखर्जीके घरकी खबर ला सकते हो?

"क्या खबर लानी होगी?"

"यह कि उनके घरकी हालत कैसी है, जमीन जायदाद कुछ है कि नहीं, किसी तरहका कर्ज है कि नहीं—यही सब।"

वह आदमी हारान बाबूकी बहुत-सी बातें जानता था। बोला—जहाँ तक मैं जानता हूँ, मुखर्जी महाशयके घरकी दशा अच्छी नहीं है। सम्पत्ति भी जान पड़ता है, कुछ नहीं है। देना या कर्ज है कि नहीं इस बारेमें मैं कुछ नहीं कह सकता।"

"अच्छा, अच्छी तरह पता लगाकर मुझे बताना।

दो दिन बाद उसने आकर बताया कि घर-गिरिस्तीकी हालत जहाँतक खराब हो सकती है उससे भी बढ़ कर घर-गिरिस्ती हो चुकी है। और सब बातें जो यह बता चुका है, सब सच हैं।

नन्दी बाबूने पूछा—मुखर्जी किसी तरहका नशा-पानी करता है क्या?

"जी हाँ गाँजा पीते हैं।"

"इसीसे उनकी आँखें इतनी लाल थीं। नशाबाजीके सिवा और भी कोई दोष है क्या?"

आदमीने सिर झुकाये हुए कहा—सुनता तो हूँ कि है।

"तो फिर एक काम करो। कल कोर्टमें जाकर हारान मुखर्जीके नाम चोरीके अपराधका मुकदमा दायर कर दो और पुलिसमें भी रिपोर्ट कर दो।"

अन्तका नतीजा यह हुआ कि मुखर्जी महाशयको पुलिसके हाथों गिरफ्तार होकर हाजतमें जाना पड़ा।

निकट होने पर भी हलदपुरका प्रायः कोई भी आदमी यह समाचार नहीं जान पाया। हाँ, विन्दोके बाप भवतारन गांगुली इस बातको जान गये थे। जान पड़ता है, मन्दी बाबूने ही उन्हें इस घटनाकी खबर दी थी। वह प्रतिष्ठित और धनी-मानी व्यक्ति थे। इच्छा करने पर जमानत देकर हारान मुकर्जीको अनायास हवालातसे छुड़ा सकते थे। किन्तु उन्होंने कुछ भी नहीं किया सहाय-सम्बलहीन मुकर्जी हवालातमें ही सड़ने लगे। और एक बात है—कलह-प्रिया कृष्णा महराजिनने यह बात कैसे सुन पाई, यह केवल वही बता सकती है।

बैसाखकी दुपहरी काले बादलोंसे ढक आई और धीरे धीरे अन्धकार हो आया। इस समय हारान बाबूके घरमें, रसोईघरके बरामदेमें उनकी स्त्री और बड़ी बेटी ललना आमने-सामने बैठी हैं। दोनोंका मुँह सूखा हुआ है। आज एकादशी है—ललना बाल-विधवा है वह एक बूँद पानी भी आज नहीं पी सकती। और उसकी मा— उन्होंने भी अभी तक कुछ नहीं खाया-पिया है।

ललनाने कहा—मा, जान पड़ता है, आज भी बप्पा नहीं आवेंगे। बादल घिर आये हैं। अगर पानी बरस पड़ा तो रसोईघरमें खड़े होनेकी भी जगह नहीं रहेगी। तुम कुछ खा क्यों न लो!

ललनाकी माने कहा—और तनिक देख लूँ। तीन दिनसे नहीं आये-आज अगर आवें!

"मा, बप्पाने तो ऐसा कभी नहीं किया। तीन दिन नहीं आये—अगर आज भी न आवें!"

"कैसे कहूँ! वही भगवान् है।"

एकादशीके दिन रासमणि (हारान बाबूकी बड़ी बहन) जरा देरसे स्नान पूजा करती थीं। अभी अभी नित्यकर्म समाप्त करके माला फेरती-फेरती पास आकर चिल्लाकर बोलीं—बहू, हरे अभी तक नहीं आया!

बहूने उदास भावसे कहा—और भी तनिक राह देख रही हूँ।

रासमणि—देखती नहीं, मेरा ख्याल कर रही है! और तनिक देखनेसे क्या होगा! वह मुआ आज इतनी देरमें क्या आवेगा! जाकर देख, गाँजा पीकर नशेमें धुत किसी ऐसी औरतके घरमें पड़ा होगा।

उपवासके कारण रासमणिका मिजाज उस दिन कुछ खिनखिना हो उठा था। कोई कुछ नहीं बोला, यह देखकर वह और भी कुछ कुपित हो उठीं। बोलीं—मुँहझौंसा कब मरेगा, कब हम लोगोंके हाड़ जुड़ायेंगे!

अब ललनासे रहा नहीं गया। उसने कुण्ठित भावसे कहा—बुआ, एकादशीके दिन कोस क्यों रही हो?

'एकादशीके दिन कोस क्यों रही हो?' यह बात रासमणिके हृदय पर चोट कर गई। उन्हें भीतर व्यथा हुई और वह इस बात पर स्वयं लज्जित हुईं। लेकिन उनसे छोटी जरा-सी छोकरी ललनाने जो यह कहकर उन्हें लज्जित किया, इससे दूना जल उठीं। बोलीं—तू अभी कलकी छोकरी मुझ बूढ़ीको एकादशी-द्वादशीकी सीख देने न आ। यह क्या तेरा ही बाप है, मेरा कोई नहीं होता?

कहते कहते रासमणिकी आँखें गीली हो आईं। बोलीं—बच्चा मेरा तीन दिनसे घर नहीं आया। मेरे कलेजेके भीतर कैसा-कैसा हो रहा है, इसे मेरे इष्टदेव ही जान सकते हैं।

आँचलसे आँसू पोंछते हुए फिर कहा—मैं बूढ़ी ठहरी। अगर कोई ऐसी-वैसी बात मुँहसे निकल जाय तो तुम लोग आँखोंमें उँगली डालकर मेरी भूल दिखाकर चार बातें सुना दो!—कोई जरूरत नहीं है बेटी, मैं अब तुम्हारी किसी बातमें दखल नहीं दूँगी। यह देखकर कि खाना-पीना छोड़कर बहू घुल-घुलकर मरी जा रही है, दो बातें बोले बिना नहीं रहा जाता।

ललना बहुत कुण्ठित हुई। वह खुद ही यह नहीं जानती थी कि उसकी एक बातका इतना गहरा मतलब निकल सकता है और वह रोने-धोनेका कारण बन सकता है। वह बोली—बुआजी, मुझसे कसूर हुआ। अब मैं कभी ऐसी बात नहीं कहूँगी।

सचमुच इस तरह कहना उचित नहीं था। उसकी माने भी कहा—बेटी, तुम अब सयानी हो गई हो—सब बातें समझ बूझकर मुँहसे नहीं निकाल सकती?

इसके बाद सबके बहुत कहने-सुनने और दबाव डालने पर ललनाकी माने कुछ आहार किया। इसी समय बिन्दोने अपनी पाँच बरसकी कन्या प्रमिलाका हाथ पकड़े हुए हारान बाबूके घरमें प्रवेश किया।

सामने ही रासमणि खड़ी थी। वह उसे देखकर बोलीं—बिन्दा, अब इस तरफ आती ही नहीं।

जिन्हें अप्रतिम होनेवाली अनुभूति नहीं। उसने भी हँसकर कहा—तुम ही दीदी, हमारे ऊपर कम आती हो!

रासमणिने कहा—मुझे कहीं आनेका मौका कहाँ मिलता है बहना। छोटे बच्चेकी बीमारीके कारण एक पग भी कहीं हिलनेका उपाय नहीं है।

"उसे क्या हुआ है? क्या बीमारी है?"

"एक हो तो बताऊँ। बुखार, तिल्ली, पेटका दर्द—कुछ भी तो बाकी नहीं है!"

"बहू कहाँ है?"

"अभी इतनी देरको, दो कौर खाकर उस कोठरीमें लड़केके पास जाकर बैठी है।"

"इतनी देर क्यों हुई?"

"हारानकी राह देखनेमें। वह तो तीन दिनसे घर ही नहीं आया। अगर आज आवे, और जरा देख ले—यही करते करते इतनी देर हो गई।"

बिन्दु वहाँसे चलकर उस कोठरीमें पहुँची जहाँ बहू शुभदा अपने बीमार छोटे लड़के माधवके सिरहाने बैठी उसे कहानी सुना रही थी। माधव हारान मुखर्जीका छोटा लड़का है। अवस्था केवल आठ वर्षकी है। आज एक वर्ष हुआ यह मलेरिया और तिल्लीके रोगसे पीड़ित होकर चारपाईपर पड़ा है। रोग उसका कुछ ऐसा कठिन नहीं है। अगर ढंगसे जाकर ढंगसे इलाज हो सकता तो अबतक आराम हो जाता। किन्तु धनके अभावमें किसी तरह अच्छी चिकित्सा नहीं हो पा रही है। साधारण घरेलू दवाएँ, टोटका, धूप-पावन और कुनैनके ऊपर भरोसा करके वह किसी तरह उठकर बैठ नहीं पा रहा है। शान्त, स्निग्ध, उज्ज्वल आँखोंसे माका मुँह ओर ताककर माधवने कहा—मा, बाबूजी आज तीन-चार दिनसे मुझे देखने क्यों नहीं आये!

वह घरमें नहीं है।"

"कहाँ गये हैं मा!"

माने कुछ इधर उधर करके कहा—तुम्हारी दवा लेने गये हैं बेटा। बालकने प्रसन्न होकर कहा—मीठी दवा लावें, कड़वी दवा अब और मुझसे

लाई नहीं जाती। देखो मा, आराम होकर फिर पहलेकी तरह घूमने-फिरनेको मेरा भी चाहता है।

कुछ देर चुप रहकर बचा फिर आग्रहके साथ पूछ बैठा—मा, मैं अच्छा तो हो जाऊँगा न?

माताकी आँखोंमें आँसू आ रहे थे। वह मन-ही-मन कह रही थी—जगदीश्वरके मनमें क्या है, वही जानते हैं। प्रकटमें वह कुछ कहने जा रही थी कि बिन्दोने चटपट पास आकर कहा—क्यों न अच्छे होगे बेटा? मैं पास रहकर जल्दीसे तुमको आराम कर दूँगी।

माधव या उसकी मा, किसीने बिन्दोको आते नहीं देखा था। सहसा दोनों ही चौंक उठे।

बिन्दोने चारपाईपर बैठते हुए पूछा—शुभदा, तू भोजन तो कर चुकी है न?

हारान बाबूकी स्त्रीका नाम शुभदा है। बिन्दो अवस्थामें उससे कुछ छोटी होनेपर भी नाम लेकर ही पुकारती थी। शुभदाने गर्दन हिलाकर कहा—हाँ।

"तेरी बड़ी लड़की कहाँ है?"

"जान पड़ता है, ऊपर है।"

"तो उसे जरा बुला।"

इतना कहकर आप ही पुकारने लगी—ललना, ओ ललना!

ललनाने ऊपरसे कहा—क्यों? क्या है?

बिन्दोने कहा—जरा नीचे तो आ बेटी।

ललनाके आनेपर उसके हाथमें अपनी कन्याको देकर बिन्दोने कहा—प्रमीलाको लेकर जरा देर अपने भाईके पास बैठ तो बेटी। बहुत दिनोंके बाद भेंट हुई है, तेरी माँके साथ उस घरमें दो-चार बातें कर आऊँ।

प्रमीलाको ललनाके हाथमें सौंपकर, शुभदाका हाथ पकड़कर, बिन्दो एक दम ऊपरकी कोठरीमें आकर बैठी। कोठरीका द्वार बन्द करके उसने कहा—बहू, हारान दादा आज के दिनसे घर नहीं आये?

"तीन दिनसे।"

"तू कुछ जानती है कि क्यों नहीं आये?"

"मा, कुछ नहीं।"

बिन्दोकी भावभंगीसे उसे डर लगा रहा था कि पीछे कहीं कुछ अशुभ बात न सुनावे। बिन्दो मौन रहकर सोचने लगी। झुमराके भी शरीरसे लगातार पसीना छूटने लगा। बहुत देर बाद बिन्दोने कहा—झुमरा, जानती तो हो, बहुत बातें ऐसी होती हैं कि इच्छा रहनेपर भी जिन्हें सीधे लगनेवाली बनाकर नहीं कहा जा सकता?

झुमराने सूखे हुए मुखसे कहा—जानती हूँ, क्यों? क्या बात है?

बिन्दोने कहा—शायद राजा बाबू तीन-चार दिनसे घर नहीं आये। मान लो उन्हींके सम्बन्धमें कोई बुरी खबर देना हो।

झुमराके सारे शरीरमें बिजलीकी लहर-सी दौड़ गई। झुमराने कहा—जान पड़ता है, वह अब जीवित नहीं हैं?

बिन्दोने कहा—यह क्या, ऐसी क्यों है? किसने कहा कि वह जीवित नहीं हैं?

वह जीवित हैं?"

'छि, जीवित क्यों न रहेंगे? जीवित हैं, शरीरसे सुस्थ हैं।"

पतिके सुस्थ शरीरसे जीवित रहनेकी खबर सुनकर भी झुमरा कुछ बोल न सकी। बहुत देर बाद मलिन मुखसे धीरे-धीरे उसने पूछा—फिर क्या है।

'यही बात कहने आई हूँ। लेकिन तू जो ऐसा करेगी तो कैसे कहूँगी?'

'झुमराने लम्बी साँस छोड़कर कहा—अब मैं ऐसा नहीं करूँगी। क्या हुआ है, बताओ?

उन्होंने चोरी की है, यह कहकर मन्नी बाबूने उनको हवालातमें बन्द करा दिया है।"

झुमराने घबराकर कहा—हवालातमें बन्द करा दिया है?

झुमराका चेहरा पीला पड़ गया। पुनः बोली—अब क्या होगा?

बिन्दोने स्वाभाविक स्वरमें ही कहा—होगा और क्या? उन्हें वहाँसे छुड़ा लाना होगा।

"यह क्या हो सकता है?"

"होगा नहीं तो क्या हवालात होनेसे ही जेल हो जाती है?

बहुत देर चुप रहकर शुभदाने कहा—बिन्दो, मैं तुम्हारे बापके पास एक बार जाऊँगी।

बिन्दोने गर्दन हिलाई। वह जानती थी कि शुभदाका मुँह देखकर पत्थर पसीज उठेगा, लेकिन भवतारन गांगुली (बिन्दोका बाप) नहीं पसीजेंगे। इसीसे सहमत न होकर उसने कहा—जाकर क्या होगा?

"हमारे कोई नहीं है। वह अगर दया करके कोई उपाय कर दें।"

"जिसके कोई नहीं है, उसके भगवान् तो हैं। तुम्हारे दादा और मेरे पितामें तबसे झगड़ा चली आ रही है। इसीसे उनके पास जानेसे कोई फल न होगा।"

"फिर क्या उपाय है?"

"उपाय मैं कर दूँगी। नहीं तो क्या केवल यह खबर सुनानेके लिए ही आई हूँ। लेकिन मैं जो कहूँगी वह कर सकोगी?"

"कर सकूँगी।"

"चाहे जितना कठिन हो?"

शुभदाने दृढ़ स्वरमें कहा—हाँ।

"■ सुनो। नन्दी बाबूने दो सौ या तीन सौ रुपये तहवीलसे चुरानेकी नालिश उनके नाम की है।"

दो-तीन सौ रुपये! शुभदाको भ्रम हुआ कि इतने रुपये भला क्या एक साथ आदमी चुरा सकता है? और चुरायेगा भी तो रखेगा कहाँ?

शुभदाने कहा—इतने रुपये उन्होंने कभी नहीं चुराये बिन्दो।

"न चुराये हों तो अच्छा ही है। लेकिन इस बातसे हमें काम नहीं है। मैं समझती हूँ कि नन्दी बाबूको यह रुपया देकर खूब अनुनय-विनय करनेसे वह छोड़ दे सकते हैं।"

"मगर यह कैसे होगा? इतने रुपये देनेको मैं कहाँ पाऊँगी?"

"वह मैं बताती हूँ। बहू, यह लज्जाका समय नहीं है। तुम मेरे ये दोनों हाथके कड़े लेकर आज रातको आप ही भगवान बाबूके पास जाओ। उसके बाद जो अच्छा समझो, वह करो।"

शुभदाने विस्मित होकर कहा—तुम्हारे दोनों कड़े ?

"हाँ, मेरे दोनों कड़े। इनके दाम तीन-चार सौ रुपये होंगे। ये कड़े देकर साध्य-साधना चिरौरी-मिनती करनेसे वह दया करके हारान दादाको छोड़ भी दे सकते हैं।"

"लेकिन बिन्दो—"

"इसमें लेकिन क्या है ? पहले स्वामीको बचाओ, उसके बाद किन्तु-परन्तु करना। यह क्या संकोच करनेका समय है बहू ? और रुपये चुका देनेकी ही क्या चिन्ता है बहू ? तेरा लड़का बड़ा होकर अदा कर देगा।"

"तो आज ही जाऊँ ?"

"हाँ, आज ही।"

"किसके साथ जाऊँ ?"

"ऐसा कोई विश्वासी आदमी है क्या ?"

"कोई नहीं।"

"तो अकेली ही जाओ। बल्कि अकेली जाना ही अच्छा है; क्योंकि चार आदमी सुन पावेंगे तो इस तरहकी बातें मढ़ दे सकते हैं।"

"तो आज जाऊँ ?"

"हाँ, आज ही जाओ। सन्ध्याके बाद एक मैली धोती पहनकर मुँह ढककर जाना। कल इसी समय मैं फिर एक बार आऊँगी।"

बिन्दोके जाते समय शुभदाकी आँखोंसे आँसू गिरने लगे। बिन्दोने स्नेहपूर्वक उन्हें पोंछ दिया, कहा—ईश्वर करें, सब मंगल ही हो। अगर इससे काम नहीं बना तो अन्य उपाय भी है। तू कुछ चिन्ता न करना।

इसके बाद आँचलसे पाँच रुपये खोलकर शुभदाके हाथमें थमाते हुए बिन्दोने कहा—बहू, मैं तेरी माके पेटकी सगी बहन ही हूँ। मुझसे कोई लज्जा नहीं है। अभी ये पाँच रुपये ले—बच्चोंको कुछ खरीद देना।

नीचे आकर ललनाका हाथ पकड़कर बिन्दोने कहा—दिन अब कुछ नहीं है—बस बेटी, घर चले। इसके बाद विधवा ललनाके ऊपर एक स्नेहसिक्त करुण दृष्टि डालकर वह अपने घर गई।

३

पहले दोपहरको जो सब बादल वायुके उपद्रवसे छिन्न-भिन्न होकर भाग गये थे, वे सन्ध्याके बाद ही एकके बाद एक बड़ी धूमसे गाजे-बाजेके साथ फिर आकाशमें जमा होने लगे। सभीने निश्चय कर लिया कि आज रातको वर्षा हुए बिना नहीं रहेगी। गर्मी कम होगी—आराम करेंगे। यह बात सबके मतलब सिद्ध होगी; केवल घुमदाने समझा कि उसीके दुर्भाग्यसे इस दुर्योगका सूत्रपात हुआ है। एक तो हलदपुर गाँवकी राह आज सन्ध्याके बीच होकर है, उसपर घोर घनघटा घिर आई है। तो भी घुमदा रुकी नहीं। वह आँचलमें वे दोनों कड़े बाँधकर, धोतीको अच्छी तरह पहनकर, एक बिछौनेकी चादरसे सारे शरीरको अच्छी तरह ढककर अपने घरसे निकली। वह पहले कभी मधुनपाड़ा गाँव नहीं गई थी। केवल यह सुना था कि उत्तरकी ओर मुँह करके चलनेसे आध कोसपर पक्की सड़क मिलती है और वहाँसे और थोड़ा आगे बढ़ते ही मधुनपाड़ा गाँव मिलता है। वहाँ पहुँच जानेपर जमींदारका घर पहचान लेनेमें कुछ भी देर न लगेगी। क्योंकि, जन्दी बाबुओंका बड़ा भारी महल गाँवमें प्रवेश करते ही देख पड़ता है, ऐसा उसने सुन रखा था। किन्तु हलदपुरकी अँधेरी राह पारकर पक्की सड़क पाना ही उसके लिए कठिन हो गया। क्रमशः अन्धकार घना हो गया—एक-दो बूँदें भी गिरने लगीं। पहले एक-दो बूँद, फिर मूसलधार पानीकी वर्षा शुरू हो गई। यह देखकर घुमदाने एक वृक्षके तले आश्रय ग्रहण किया। राह बिल्कुल अनजान था। अन्धकार इतना गहरा था कि हाथ भरके फासलेकी चीज भी नहीं देख पड़ती थी। प्रबल वर्षा और उसके साथ बिजलीकी चमक और कड़क, घुमदा भीतर तक काँपने लगी। उसने देखा, चारों ओरसे जंगली जीव-जन्तु दौड़ते हुए उसी वृक्षके नीचे आश्रय लेने आ रहे हैं। पास आकर मनुष्यकी मूर्ति वहाँ खड़ी देखते ही भयसे चिल्लाकर तुरन्त भाग खड़े होते हैं। घुमदाको सहसा यह ख्याल आया कि अगर कोई चोर या डाकू इसी जगह पानीसे बचनेके लिए आ पड़े तो क्या होगा! उसे अपने प्राणोंका भय नहीं हुआ किन्तु प्राणोंसे भी अधिक मूल्यवान् दो कड़ोंकी जोड़ी उसके पास थी, उसके लिए भय हुआ। स्वामीके दुःसाध्य उपाय और अपना सब आशा-भरोसा यही कड़ोंकी जोड़ी थी

झुमरा दृश्यके सामनेसे भाग खड़ी हुई। सारा शरीर उसका पसीनेमें सन गया। झाड़-झंखाड़की खरोंचसे और उनके काँटोंसे उसके सब अंग क्षत-विक्षत हो गये—लहुलुहान हो गये। तो भी झुमरा रुकी नहीं—भागती ही रही। एक क्षणके लिए भी दया नहीं करती थी। पीछे मरनेके लिए भी बादलोंका गरजना या बिजलीका कड़कना बन्द न था। वह किस तरफ, कहाँ जा रही है, इसका कुछ ठीक न था। तथापि जंगलके झाड़-झंखाड़को हाथोंसे हटाती हुई वह आगे बढ़ने लगी। बहुत देर बाद उसे जान पड़ा, जैसे अपेक्षाकृत चौड़ा रास्ता सामने दिखाई पड़ रहा है। दूने उत्साहसे आगे बढ़कर झुमराने देखा, सचमुच ही पक्की सड़क पर आ गई है।

लेकिन अब और एक चिन्ता हुई। जब तक राह नहीं मिली थी तबतक उसे केवल राह पानेकी चिन्ता रही, अब जिस कामके लिए आई थी, उसकी चिन्तामें पड़ गई। इतनी रातको कैसे मुलाकात होगी? मुलाकात होने पर भी क्या कार्य सिद्ध होगा? काम बने या न बने, इस दुर्योगमें वह घर कैसे लौटकर जायगी? यह सब सोचते-सोचते उसने धीरे धीरे गाँवके भीतर प्रवेश किया। कुछ दूर आगे जाकर ही भारी मकान और उसके चारों ओर ऊँचा हुआ ईंटोंकी दीवारोंसे घिरा हाता देखकर उसने अनुमान किया कि यही मन्नी-घरानेका घर है। लेकिन उसके भीतर कैसे प्रवेश किया जाय? और प्रवेश करने पर भी इतनी रातको वह जमींदार बाबूसे कैसे मिल पावेगी? झुमराको रुलाई आ गई। अब क्या होगा? वह कैसे घर जायगी? परिश्रम, अनाहार और दुश्चिन्तासे वह मृतप्राय हो गई। मन्नी बाबूकी ड्योढ़ीके सामने एक शिव-मन्दिर था। उसीके बरामदेमें चढ़कर वह लेट गई। उस समय वर्षा बिलकुल बन्द नहीं हुई थी, हाँ, कम होती जा रही थी।

देहातके बादल जैसे पलभरमें देखते देखते आकाशको ढक लेते हैं वैसे ही क्षण भरमें आकाश छोड़ गायब हो जाते हैं। उस दिनके बरस गये मेघ भी देखते देखते आकाशके छोरमें दूर जाने लगे। आकाश स्वच्छ हो गया। चन्द्रमाकी चाँदनीसे जगत् जगमगा उठा। झुमराने मनमें सोचा, अब भोर होनेका समय हुआ है। वह अपनी भीगी धोती और चादरको ऐंठने लगी।

इतनेमें उसे देख पड़ा, एक वृद्ध पुरुष नौकरके साथ, जो लालटेन हाथमें लिए है, जमींदारके बरामदे का फाटक खोलकर मन्दिरकी ओर आ रहे हैं। इन वृद्धके

अगर कुछ पता लग जाय, ऐसी एक क्षीण आशाके सहारे शुभदा प्रस्थान न करके एक किनारे खड़ी रही। वृद्धने मन्दिरके द्वारके सामने आकर देखा, एक स्त्री घूँघटसे मुँह ढके खड़ी है। वह कुछ न कहकर मन्दिरके भीतर चले गये। कुछ देर बाद बाहर निकले तो देखा, वह स्त्री अब भी वैसे ही खड़ी है। उसने घूँघट देखकर पहले अनुमान किया था कि किसी भले घरकी कोई स्त्री पानीसे बचनेके लिए यहाँ आ खड़ी हुई थी, अब चली जायगी। किन्तु अब भी उसे उसी तरह खड़ी देखकर वृद्धको उसके बारेमें जाननेका कौतूहल हुआ। वृद्धने पूछा—तुम कौन हो? स्त्रीने कुछ उत्तर नहीं दिया।

"कहाँ जाओगी बच्ची?"

शुभदाको बोलनेमें लज्जा लग रही थी किन्तु अब उसने धीरेसे कहा, "जमींदार बाबूके घर।"

"जमींदारका घर तो वह सामने ही है। फिर वहाँ न जाकर यहाँ क्यों खड़ी हो?"

शुभदा कोई उत्तर न दे सकी।

वृद्धने फिर पूछा—जमींदारके घरमें किसके पास जाओगी?

"बाबूके पास।"

"किन बाबूके पास?"

"मझले बाबूके पास।"

वृद्धने विस्मित होकर कहा—मझले बाबूके पास?

"हाँ।"

"तो मेरे साथ आओ।"

वृद्ध आगे आगे चलने लगे। शुभदा चाँदनीके उजालेमें वृद्धके श्वेत केश और सौम्य मूर्ति देखकर निःसंकोच भावसे पीछे पीछे चलने लगी। क्रमशः आँगन पार होकर, बाग पार होकर, एक कमरेका द्वार खोलकर वृद्धने पुकारा—इस बैठकमें आओ।

शुभदाने कमरेमें प्रवेश करके देखा, खूब सजा हुआ कमरा है। सारे फर्शपर कीमती गलीचा बिछा है। सामने मसनद तकिया रखा है। वृद्धने उधर बैठकर शुभदाको दीपकके प्रकाशमें सिरसे पैर तक, कुछ खुले हुए घूँघटके भीतरसे जितना देखा जा सकता था, गौरसे देखा। शुभदा एक समय रूपसी थी।

और कुसुम-कलीसे पहलेकी वह ज्योति अब नहीं है, तथापि कुछ रहे अवशेष जो कुछ बचा बचा है, उसीसे वह मोहित हो गये। बड़ी देर तक देखकर उन्होंने कहा—अम्मा, तुमसे गलती हुई। जान पड़ता है, तुम विनोद बाबूसे मिलना चाहती हो।

"विनोद बाबू कौन हैं?"

"विनोद बाबू भगवान बाबूके छोटे भाई हैं।"

"मैं उनसे नहीं मिलना चाहती।"

"तो क्या भगवान बाबूसे तुम्हारा कुछ प्रयोजन है?"

"जी हाँ।"

"भगवान बन्दी मेरा ही नाम है। लेकिन मैंने तुमको कभी देखा हो, याद नहीं पड़ता।"

"जी हाँ, आपने मुझे कभी नहीं देखा।"

भगवान बाबूने कहा—तो फिर मुझसे तुम्हारा क्या प्रयोजन हो सकता है?

सुभद्रा कुछ नहीं बोली। भगवान बाबूने फिर कहा—मैंने सोचा था, शायद किसी खास प्रयोजन विनोदके पास हो सकता है। इसकी जगह मेरे निकट तुम्हारा क्या प्रयोजन हो सकता है—मेरी समझमें नहीं आता।

सुभद्राने फिर भी कुछ उत्तर नहीं दिया।

"तुम्हारा घर कहाँ है?"

"हरदेवपुरमें।"

"हरदेवपुरमें? मुझसे प्रयोजन? तुम क्या हारानकी बहू हो?"

सुभद्राने घूँघटके भीतरसे गर्दन हिलाकर कहा—जी हाँ।

"कहो, क्या प्रयोजन है?"

सुभद्राने आँचलसे दस कड़ोंकी जोड़ी खोलकर धीरे धीरे भगवान बाबूके पैरोंके पास रख दी और गद्गद कण्ठसे कहा—उनको छोड़ दीजिए।

बाबू सब समझ गये। दोनों कड़े हाथमें लेकर अच्छी तरह जाँचकर मनमें बोले—तो भी मुझे खुशी हुई कि उसने तुमको इतना भी दिया था।

इसके बाद दोनों कड़े नीचे रखकर बोले—तुम इन्हें लौटा ले जाओ। मैं मामलेकी नालिश हटाके कभी नहीं उठाना चाहता। अगला दिन आने दो ही छोड़ दूँगा। विनोदकर उसने मेरे जितने रुपये लिये हैं, वे इन कड़ोंसे अदा नहीं हो सकते।

शुभदाने अपने आँसू पोंछकर कहा—उन्हें छोड़ तो दीजियेगा न?

"इच्छा तो न थी। वह जैसा बदमाश है, उससे उसे दण्ड मिलना ही उचित था। फिर भी तुम्हारे कहनेसे छोड़ दूँगा।"

शुभदाकी आँखोंसे सावन-भादोंकी झड़ी लग गई। लेकिन इसको वह ब्राह्मण कन्या होकर भी मुँह खोलकर आशीर्वाद देनेका साहस नहीं कर सकी। मन ही मन उनको सैकड़ों धन्यवाद देकर, ईश्वरके चरणोंमें उनका हजारों तरहका मंगल मनाकर वह जानेके लिए उठ खड़ी हुई।

भगवान बाबूने सिर उठाकर कहा - आज ही घर जाओगी?

शुभदाने गर्दन हिलाकर बताया कि आज ही जाऊँगी।

भगवान बाबूने पूछा—तुम्हारे साथ और कोई आदमी है?

"कोई नहीं।"

"कोई नहीं? तो इतनी रातको अकेली न जाओ। एक आदमी साथ दे जाता।"

शुभदा यह भी अस्वीकार करके अकेली ही उस बंगलेके भीतरसे घरको लौटी।

जब उसने घरमें प्रवेश किया, उस समय भोर हो गया था। ललना पहले ही उठकर घरके कामधाम करनेकी चेष्टा कर रही थी। भीगे कपड़ोंमें माँको देखकर उसने कहा—मा, इतने तड़के नहा आई?

शुभदा 'हाँ' कहकर भीतर चली गई।

४

रासमणि और कृष्णमणि नाम न रखकर शुभदाने जो दोनों बेटियोंके नाम ललना और छलना रखे थे, इससे ननद रासमणिके मनको बड़ा धक्का था।

खासकर बेशरमीकी-सी ललना और छलना ये दोनों नाम आठों पहर उनके कानोंमें खटकने लगा। ललना नाम तो फिर भी कुछ उतना बुरा नहीं है; लेकिन छि.—छलना भी कोई नाम है! रासमणि छलनाको जो नहीं देख सकती थीं, उसका आधेसे अधिक कारण उसका यह नाम था। लोग लड़के-लड़कियोंके नाम देव-देवियोंके नामपर रखते हैं क्योंकि उन्हें पुकारनेमें भी भगवान्‌का; देवी-देवताओंका नाम मुँहसे निकलता है; किन्तु इन दोनों लड़कियोंके पुकारनेमें पाप पड़ता है, जैसे पापका बोझा थोड़ा थोड़ा करके बढ़ रहा है।

करुणामयी, प्रभामयी दोनों हारान बाबूकी कन्या हैं। एक बड़ी है, एक छोटी। एक सत्रह सालकी है, दूसरी ग्यारह बरसकी है। एक विधवा है, दूसरी कुँआरी।

यह तो हुई परिचयकी बात। अब रही रूप-गुणकी बात, सो मैं कैसे बताऊँ। हाँ, गंगाके घाटोंपर करुणा स्नान करने जाती तो बड़ी-बूढ़ी आपसमें कहने-सुनने लगतीं, "भगवान्‌को विधवा करना था, इसीसे छोकरीको इतना रूप दिया।" करुणा और तरफ मुँह फेरकर गोते लगाती रहती। हमजोली औरतोंमें कानाफूसी होने लगती। क्या कहती थीं, यह वे ही जानें; मगर उनके भावसे जान पड़ता है, वे उसकी विशेष बड़ाई नहीं करती थीं। करुणाका इससे कुछ आता-जाता नहीं। वह अधिक बोलती भी न थी और लोगोंकी बातोंपर विशेष ध्यान भी नहीं देती थी। दो-चार बातें करती, नहाती, गंगाजीमें जल भरती और सीढ़ियाँ चढ़कर घर चली आती। किन्तु प्रभाकी बात और थी। वह अधिक बात करना पसन्द करती, लोगोंकी बातोंमें पड़ना उसे अच्छा लगता। घरसे आठ बजे घाट पर स्नान करने जाती और ग्यारह बजेसे पहले घर लौटकर न आती। तन पर गहने न होनेके लिए मुँह फुलाती। मोटे चावलोंका भात खाया नहीं जाता—कहकर झगड़ा करती। पाँवोंमें महावर क्यों नहीं है—कहकर माई बापसे ठेक देती। दिनमें सैकड़ों-हजारों इसी तरहके काम किया करती। वह भी परम सुन्दरी थी—उसके शरीरमें भी रूप समाता न था। तपे कुन्दनका-सा रंग था। गुलाबके फूलकी तरह मुख था। मुख-मण्डलमें दोनों भौंहें जैसे किसी चितेरेने तूलिका (कूची) से चित्रित कर दी हों। दोनों पतले पतले होठोंको पान खाकर लाल करके दर्पण हाथमें लेकर प्रभामयी निर्जनमें अपना रूप देखती और गौरव तथा गर्वसे उसका हृदय भर जाता। वह मन-ही-मन कहती कि इस अवस्थामें जब इतना रूप है तो अवस्था पाकर—जवानीमें—न जाने क्या होगा! सभी अंगोंमें इतने गहने रहेंगे—कहीं अनन्त, कहीं बाजूबन्द, कहीं हार, चिक, कंठी, माला—सतलड़ी, पंचलड़ी, तीनलड़ी, और भी न जाने क्या क्या कितना गहना—ओह, तब क्या होगा!

इतने सारे आनन्दको प्रभा अकेले सँभाल न पाती, दौड़कर अपनी दीदीके पास आ बैठती। करुणा पूछती —क्या है? दौड़ी क्यों है?

प्रभा—दीदी, मेरा रंग क्या पहलेसे साफ हो गया है कुछ?

ललना—अच्छा क्यों होगा पगली !

"नहीं हुआ ! अच्छा दीदी, हमारे गाँवमें कोई हाथ देखना
जानता है क्या ?"

"—क्यों ?"

"मैं अपना हाथ दिखाऊँगी !"

"क्यों, भला ?"

"वह हाथ देखकर बता देगा कि मेरे गहने होंगे कि नहीं !"

ललनाकी आँखोंमें आँसू आ जाते । वह कहती—होंगे बहन, होंगे । तू
ठकुरानी होगी ।

ललना क्या कहती ! मुँह बन्द करके रोकर अच्छा मान जाती । गहने होंगे
कि नहीं, यही वह पूछ रही थी । ठकुरानी होनेकी बात किसने कही ?

कभी आकर ललना पूछती—दीदी, हम लोगोंके कुछ क्यों नहीं है ?

ललना कहती—हम गरीब दुखिया हैं, इसलिए ।

"गरीब दुखी क्यों हैं दीदी ? गाँवमें कौन हम लोगोंकी तरह ऐसे रहता
है—ऐसे कष्ट पाता है ?"

"ईश्वरने जिसे जैसा बनाया है—जिसके भाग्यमें जैसा लिख दिया है, उसे
उसी तरह रहना पड़ता है ।"

ललना ऐसा कहती—ईश्वरने और किसीको ऐसा नहीं बनाया, केवल हम
लोगोंको ही ऐसा बनाया है ?

"हमारे पूर्वजन्मके पापका फल है ।"

"कौन-सा पाप ?"

"पाप क्या एक तरहका है बहन ? शायद ऐसे बहुत-से कर्म किये हैं जो न
करने चाहिए थे । धन-मानकी भक्ति नहीं की—भक्ता नहीं की—अनुचित रूपसे
लोगोंको भी दुखाया—सताया दिया । और भी न जाने क्या क्या किया होगा ।

ललनाका मुख मुरझा गया । बोली—तो क्या इसी तरह सदा हमारे दि[illegible]
बीतेंगे ? क्या कभी सुख न मिलेगा ?

"ऐसा क्यों सोचती हो बहन ? बुरे दिन बीत जानेपर फिर अच्छे दि[illegible]
आयेंगे ।"

इसके बाद स्नेहपूर्वक छलनाके दोनों हाथ अपने हाथोंमें लेकर वह कहती—देख लेना, तुझे कितना सुख होगा। कितना ऐश्वर्य, कितने गहने, कितने दास-दासी घेरे होंगे—तू राजरानी होगी।

छलना चुप-चाप यह बात सुनती थी। एक दिन ललनाके यों कहनेपर छलना बिना सोचे-समझे कह बैठी—और दीदी, तुम?

वह जानती थी कि उसकी दीदी विधवा है, तो भी बालिका सुलभ चपलताके कारण उसके मुँहसे आप-ही-आप अनायास यह बात निकल गई। इसीसे छलना सिर झुकाकर चुप हो रही।

ललनाने मुसकाकर कहा—मैं भी तुममें रहूँगी बहन।—वह तुझे मा पुकार रही है।

छलना चली गई। सचमुच ही उसे मा पुकार रही थी। पास आकर छलनाने कहा—क्यों मा?

शुभदाने कहा—तुम्हारे बाबू आये हैं उस तरफ हैं—

बात पूरी होनेके पहले ही छलना चल दी थी।

हारान जब खाना खाने बैठे तब उसकी बहन रासमणिने पूछा—इतने दिन कहाँ रहे?

मुँहमें कौर डालकर हारानबाबूने गम्भीर भावसे कहा—वह बड़ा किस्सा है।

रासमणिने आश्चर्यसे मुँह फैलाकर कहा—बड़ा किस्सा क्या है रे!

उस कौरको गलेके नीचे उतारकर पहले ही की तरह गम्भीर मुखसे हारान-बाबूने कहा—बड़ा किस्सा यह है कि सिरके ऊपरसे भयानक तूफान निकल गया है!

रासमणिके विस्मयकी सीमा नहीं, चिन्ताका अन्त नहीं। प्रायः रुँधे हुए गलेसे कह उठी—खुलासा करके कह हारान।

हारानचन्द्र गम्भीर मुखमें हँसी-सी हँसी लाकरके बोले—नष्टचन्द्र * के

---

* भादों-सुदी चौथका चन्द्रमा नष्टचन्द्र कहलाता है। ऐसा प्रसिद्ध है कि उस रातको जो कोई चन्द्रमाको देखता है, उसे मिथ्या-कलंक लगता है। श्रीकृष्ण स्वयं स्यमन्तक मणिकी चोरी चन्द्रमाके देखनेके कारण लगी थी। साधारण लोग इसे ढेला-चौथ कहते हैं।

—अनुवादक

कलकत्तेकी बात जानती हो ? मेरा वही हाल हुआ था। चोरी लगाकर नन्दी बाबूने मुझको—नहीं, मेरे भाग्य नालिश की थी।

"नालिश की थी ?"

"हाँ, नालिश की थी; लेकिन झूठ बात कितनी देर टिक सकती है ? कुछ भी साबित नहीं हो सका—आज वही मुकदमा जीतकर घर आया हूँ।"

घूँघटके भीतर झुमराने आँखें पोंछीं। रासमणिने नन्दी-घरानेकी बहुत मंगल कामनाकी, उनकी सात पीढ़ियोंको मुक्ति देनेके लिए दुर्गा महारानीके चरणोंमें प्रार्थना की। इसके बाद कहा—किन्तु वे क्या तुम्हें नौकरीमें फिर रखेंगे ?

हारानचन्द्रने आँखें लाल करके कहा, नौकरीमें रखेगा ? मैं जब नौकरी करूँगा तभी तो रखेगा ? हरामजादे भगवान नन्दीका मुँह मैं इस जन्ममें नहीं देखूँगा। अगर जीता रहा तो इसका बदला दूँगा—मेरा जैसा अपमान किया है उसका बदला जरूर चुकाऊँगा।

रासमणि कुछ देर भीत-विस्मित दृष्टिसे अपने वीर स्वामीकी ओर ताकती रही। फिर धीरे धीरे बोली—तो फिर अबका खाना-खर्च—

हारानने हँसके साथ कहा—उसकी चिन्ता न करो दीदी। मैं मर्द-बच्चा ठहरा—मुझे चिन्ता क्या है ? कल ही किसी और जगह नौकरी ढूँढ़ लूँगा।

हारानचन्द्रकी इस बातपर रासमणिने सम्पूर्ण विश्वास कर लिया हो, यह बात न थी, तथापि वह कुछ आश्वस्त हुई—उन्हें कुछ गौरव हुआ। सम्पूर्ण अविश्वास करनेकी अपेक्षा इस दारुण दुश्चिन्ताके हाथसे छुटकारा पानेके लिए ऐसे समय स्त्रीकी इच्छा होती है। रासमणिने भी यही किया। उन्होंने अपने मनको समझाया कि वह जो कहता है वही शायद करेगा। कमसे कम अन्तमें इस विपत्तिके समय तो आँखें खुलेंगी।

कुछ देर चुप रहकर रासमणिने कहा—जो भाग्यमें हो वही भरना—नहीं तो हारी-बीमारीमें, बाल-बच्चे लेकर संकट और कष्टकी कोई सीमा नहीं रहेगी।

एक लम्बा-चौड़ा उत्तर देकर हारानचन्द्रने भोजन समाप्त किया और उठ खड़े हुए। अब माधवसे भेंट हुई। उसने सुना था कि पिता आये हैं, इसीसे आग्रह उन्मुख होकर अपनी चारपाईपर बैठा था। हारानचन्द्रने पास आकर उसकी देहपर हाथ फेरकर कहा—"कैसे हो माधव ?

"आज अच्छा हूँ बाबू। तुम इतने दिन आये क्यों नहीं ?"

शुभदाने मुस्काते हुए थोड़ेसे कहा—अब और तो कुछ नहीं है।

हारानचन्द्रने हँसते हुए कहा—यह कहीं हो सकता है! तुम्हारा लक्ष्मीका भंडार कभी नहीं चुकता।

शुभदाने मन ही मन लक्ष्मीके भंडारकी बात स्मरण की। प्रकटमें कहा—सचमुच कुछ नहीं है।

"क्यों न होगा! कल तो मैंने देखा था कि कुछ-न-कुछ पैसे और एक रुपया भी था।"

शुभदा चुप हो रही। हारानचन्द्रने फिर कहा—छिः! मुझे दो पैसे देनेमें तुमको विश्वास नहीं होता! अच्छा रुपया देनेमें विश्वास न हो तो चार आने पैसोंका तो विश्वास करना चाहिए।

शुभदाने और कोई आपत्ति नहीं की। हाथ धोकर स्वामीके हाथमें वह रुपया भी लाकर रख दिया।

५

धनका सद्व्यवहार इन्हींको तो कहते हैं। हारानचन्द्र हलदपुर गाँव पार होकर कृष्णनगरमें आये। इसके बाद एक गलियारेसे राह पाकर एक दरवाजेसे घिरे हुए झोपड़ेमें घुस गये। वहाँ अनेक आदमी जमा होकर एक कोनेमें बैठे थे। यह एक मदक पीनेवालोंका अड्डा था। हारानचन्द्रको देखते ही वे आदमी खुशीके मारे उछल पड़े—महाकलरव कर उठे। अनेक प्रीति-सम्भाषण हुए—किसीने हारानचन्द्रको भैया कहकर पुकारा, किसीने दादा कहकर पुकारा, किसीने मामा, किसीने मौसा इत्यादि कहकर लोगोंने बहुतसे मान्य सम्बन्ध जोड़े। हारानचन्द्र सुरभीकी तरह उन लोगोंके बीच विराजमान हुए। तरह-तरहकी अनेक बातोंका सिलसिला चलने लगा। अनेक राजा-महाराजाओंकी मैत्री स्थापित मुँह-बात किया गया, लाखों रुपये खर्च कर डाले गये। यह मदककी दूकान थी ठहरी। घरके एक छोरमें मकान है और दूसरे छोरमें मदककी दूकान। मकानमें महाशय भी भिक्षुकके बराबर हो जाते हैं और यहाँ भी भिक्षुक महाराजाके समान अपनेको समझ लेता है। अमीरके हिसाबसे धनी मदकका धुआँ नोचता थोड़ेसे मजमेमें जमा होकर जितना नशेका और बढ़ने लगा, उतना ही एक एक करके इरादेका महत्त्व, पढ़ना-लिखना, तेज, गाम्भीर्य, पाण्डित्य इत्यादि सद्गुण

फूलकर फैलकर अनन्त अपार होने लगे। कितना दान, कितना प्रतिदान होने लगा! मणि, मुक्ता, हीरा, सोना-चाँदी—कितने ही रत्न, कितनी ही राजकन्या मरकतके हर 'छींटे' का धुआँ सींचनेपर बिना किसी बाधाके उस अंधकारमें आते-जाते नजर आने लगा। एकदम इतने धन, जगत्‌की सभी कामनाकी वस्तुएँ उस आध अन्धकार और आध उजालेमें, उस प्रहर भरमें, जमीनपर सुलभ हो रही थीं। उस दृश्य-सम्पदका वर्णन मैं न कर पाऊँगा।

क्रमशः संध्या हो रही है, यह देखकर अनेक कालिदास, अनेक दिल्लीके बादशाह, अनेक नवाब सिराजुद्दौला, अनेक मियाँ तानसेन एक एक दरवाजेसे बहर निकलकर अकेले बाहर आने लगे। जगत्‌के नीच लोगोंके साथ मिल-जुल नहीं सकते; उनसे जान-पहचान या बातचीत करना इन्हें शोभा नहीं देता। अतएव वे लोग राहके किनारे-किनारे चुपचाप अपने-अपने महल्लेको चल दिये।

हारानचन्द्र भी उन लोगोंकी तरह बाहर निकले; किन्तु बाहर आकर कुछ गड़बड़ीमें पड़ गये। न जाने क्योंकि उस अभागे पेटकी भाषाका बरबस याद आ गया। साथ ही साथ बड़ाने अनाजकी बात भी याद आ गई। और सब नशेबाजोंकी तरह अवश्य वह कोई विशेष ऊँचा पद पाकर बाहर नहीं निकले थे, किन्तु मुँहवाले उस छोकरेके कुल्हड़ने उस मौकेके समयमें विषम विशृंखल सा ही—उलट-पुलट कर दिया। दिल्लीके बादशाह (हारान) ने जेबमें हाथ डालकर देखा, राजकोष प्रायः खत्म हो गया था। इतने बड़े सम्राट्‌के पास चार पैसे और एक गाँजेकी चिलमके सिवा और कुछ न था। बहुत अच्छा! उदीयमान उत्साह लेकर वह पासकी एक गाँजेकी दूकानमें घुस गये।

ठेकेदारसे फिर सम्भ्रमसे शुरु करके बोले—चाचा, चार पैसेकी पुड़िया तो देना।

ठेकेदारने झट उस आज्ञाका पालन किया।

हारानचन्द्रने तब मनके माफिक एक वृक्षके नीचे स्थान खोजकर गाँजेके दमकी महाप्रयास विशृंखल राज्यको फिर सुशृंखलतासे ठीक कर लिया। गाँजेको मलना, चिलममें भरना और आग लगाकर दम मारना आदि सब काम विधि पूर्वक समाप्त हो जानेपर रात बहुत होते देखकर हारान बाबू इधर उसका आश्रय छोड़कर उठ खड़े हुए। बहुत दूर जाकर एक लम्बेके मकानके सामनेके द्वारको खटखटाकर उन्होंने पुकारा—कात्यायनी!

किसीने उत्तर नहीं दिया ।
फिर पुकारा—मैं कहता हूँ बाबू, घरमें हो क्या ?
तो भी उत्तर नहीं ।

खीझकर हारानचन्द्रने चीखकर पुकारा—अरे घरमें हो तो जरा आकर दरवाजा खोल जाओ ना ।

एक बार बहुत क्षीण कण्ठसे जवाब आया—कौन है ?
"मैं हूँ—मैं ।"

"मेरी तबियत ठीक नहीं है—उठ नहीं सकूँगी ।"
"यह न होगा । उठकर खोल दो ।"

अभी एक पचीस सालके आसपास अवस्थाकी लम्बी-चौड़ी मोटी-ताजी सारे अंगमें गोदना गोदाये, चमकती नाक-नथनोंकी कीलें झनझनाकर आह उफ करते हुए आकर उसने दरवाजा खोल दिया ।

"ओह, पेटके दर्दसे मर रही हूँ ! इतना साँड़की तरह चिल्ला क्यों रहे हो !"

"क्या खुशीसे चिल्लाता हूँ । जब दरवाजा नहीं खुलता तभी चीखना पड़ता है ।"

गुस्सी खीझकर बोली—ना बाबू, इतना उत्पात मुझसे नहीं सहा जायगा । आना हो तो जरा जल्दी आओ । एक नहीं, दो पहर नहीं, जब देखो तब इस तरह चिल्लाओ, यह न होगा । इतना ऊधम मुझे अच्छा नहीं लगता ।

हारानचन्द्रने भीतर प्रवेश करके साँकल लगा दी । एक बार कात्यायनीकी ओर देखकर कहा—आह ! तुम्हारे पेटमें दर्द हो रहा है, यह तो मैं जानता नहीं था ।

"तुम कैसे जानोगे ! जानते हैं मोहल्लेके लोग । सबेरे एक घड़ी तक पेटमें एक बूँद भी पानी नहीं गया ।—अच्छा बताओ, इतनी रातको कैसे आये ?"
"कुछ काम है ।"
"काम ! क्या काम है ?"
"अभी बताता हूँ । तुम जरा एक चिलम तो तब तक भर दो ।"

कात्यायनीने अप्रसन्न क्रुद्ध होकर हाथसे पलंगका एक कोना दिखाते हुए कहा —उस कोनेमें सब सामान है। तमाखू पीना हो तो अपने हाथसे भर लो। मुझे और परेशान न करो—मैं अब क्या सोऊँगी।

हारानचन्द्रने हँसते हुए कहा —ना, ना, तुमसे नहीं कहा—मुझे खयाल ही नहीं रहा; तुम जाकर सो रहो —मैं आप भरे लेता हूँ।

तब तमाखू भरकर हुक्का हाथमें लेकर हारानचन्द्र कात्यायनीके पास चारपाई पर आकर बैठे। बहुत देर तमाखू पीते रहनेके बाद धीरे धीरे—बहुत धीरे, बहुत कोमल स्वरमें—कहीं गलतीसे आवाज कर्कश न सुनाई दे—हारानचन्द्रने कहा—बहू, आज मुझे दो रुपये देने होंगे।

कात्यायनी कुछ नहीं बोली।

"सुना तुमने? सो गईं क्या, आज मुझे दो रुपये देने ही होंगे।"

कात्यायनीने करवट तो बदली, पर बोली नहीं। हारानचन्द्रने कात्यायनीके शरीरपर हाथ रखकर कहा—बोलो तो?

कात्यायनी झल्लाकर बोली —बेकार भिन-भिन क्यों करते हो? कहाँसे दूँगी?

"क्यों? तुम्हारे पास नहीं है क्या?"

"नहीं।"

"है क्यों नहीं? यही बहुत है। आज यह इतनी दया मुझपर करनी ही होगी।"

"पास होंगे तभी तो दया करूँगी।"

'दो रुपये तो तुम्हारे पास जरूर ही हैं। मैं जानता हूँ कि हैं। रुपया न होनेसे भरपेट खाना खानेको नहीं पाते, अपने रोगी लड़केके मुँहका खाना छीनकर मैं खा रहा हूँ। छाती और प्यास मरी जाती फटी जा रही है। बहू, आज मुझे बचाओ।"

कात्यायनीने फिर कहा—तो तब तो बताऊँ? मेरे पास एक पैसा भी नहीं है।

अबकी हारानचन्द्रको क्रोध चढ़ आया। बोले—क्यों न होंगे? इतने रुपये मैंने तुमको दिये हैं, और आज विपद्-कालमें दो रुपये भी तुमसे नहीं निकलते? अच्छा चाबी लाओ, सन्दूक खोलकर देखूँ, रुपये हैं कि नहीं?

कात्यायनीकी आँखोंमें जैसे किसीने सुई भोंक दी। एक झटकेसे झटककर हाथ हटाके वह उठ बैठी। क्रोध और दर्पसे भरे नेत्रोंसे हारानके मुँहके ऊपर तीक्ष्ण दृष्टि गिराकर बोली—क्यों, तुम कौन हो, जो तुमको सन्दूककी चाबी दे दूँगी

हम छोटी जातिकी हैं—नीच जात कहनेमें उसकी जबान नहीं रुकती। उसने अनायास ही चीत्कार करके कहा—जब मुझे तुमसे रुपया था तब रुपये दिये थे इसलिए क्या तुम्हारे बुरे समयमें मैं फेर दूँगी?

हारानचन्द्रका मुँह एकदम कुम्हला-सा हो गया। कात्यायनीके मुँहके सामने वह कभी खड़े नहीं हो सकते; आज भी नहीं हो सके। निरुपाय नरम होकर बोले—तो भी प्यारके बदलेमें नहीं कुछ उपकार करना होता है?

कात्यायनी सुनकर बोली—भाड़ प्यार है! ऐसे प्यारके मुँहमें आग! तीन महीनेसे क्या तुमने एक भी पैसा दिया है जो तुम्हें प्यार करूँगी?

"छिः! ऐसी बात न कहो कात्—तुम्हें क्या मुझसे प्यार नहीं है?"

"रत्ती भर भी नहीं। हम लोगोंका जहाँ पेट भरता है, वहीं प्यार होता है। हम क्या तुम लोगोंकी घरकी जोरू हैं कि गलेपर छुरी फेरने पर भी प्यार करेंगी? तुम्हारे सिवा क्या मेरी और गति नहीं है? जिससे रुपया मिलता है, उसीका हम आदर करती हैं—प्यार करती हैं। जाओ, घर जाओ—इतनी रातको दिक न करो।

"कात्, तब क्या समाप्त हो गया?"

"समाप्त हुए बहुत दिन हो गये। इतने दिन आँखोंके लिहाज मैंने सामने कुछ नहीं कहा। अब जब तुमने बात छेड़ी है तो सब स्पष्ट ही कहती हूँ। तुम्हारा स्वभाव-चरित्र खराब है—मेरे यहाँ अब न आना। बाबू लोगोंका रुपया चुराकर जेल जा रहे थे—नौकरी-चाकरी नहीं है, किसी दिन मेरे ऊपर भी हाथ साफ कर बैठोगे। उससे यही अच्छा है कि पहलेसे ही अपनी राह देखो। अब यहाँ न घुसना।"

हारानचन्द्र बहुत देर तक उसी प्रकार उसी दशामें मौन होकर बैठे रहे। इसके बाद धीरे धीरे सिर उठाकर कहने लगे—अच्छा यही होगा, मैं यहाँ अब न आऊँगा। तुम्हारे ही फन्देमें मेरा सब गया—मेरी सब दशाएँ हुईं। तुम्हारे ही कारण मैं चोर बना; तुम्हारे ही कारण मैं [illegible]; तुम्हारे ही कारण मैं अपनी स्त्री और पुत्रसे शून्य हुआ हूँ। अच्छा तुम्हीं—

हारानचन्द्र कुछ देर ठहरकर फिर बोले—आज मेरी आँखें खुल गईं—

अबकी कात्यायनी भी नरम पड़ी। थोड़ा खिसककर हारानके कुछ पास बैठकर बोली—भगवान् तुम्हारी आँखें खोले हैं। हम छोटी जातिकी औरतें हैं,

छोटी जातिकी हूँ, लेकिन यह समझती हूँ कि पहले स्त्री-पुत्र घर-द्वार, उसके बाद हम—पहले पेटकी रोटी, पहननेके कपड़े, उसके बाद सब शौक और नशा-पानी। मैं तुम्हारा बुरा नहीं चाहती। तुम्हारे भलेके लिए ही कहती हूँ कि अब यहाँ न आया करो, गाँजा-मदकके अड्डेमें अब न जाओ। घर जाओ, जाकर अपनी स्त्री और पुत्रको देखो, घर सँभालो, नौकरी-चाकरी करो, लड़की-बच्चोंको दो कौर खानेका अन्न जुटाओ। उसके बाद भी चाहो तो यहाँ आना।

कात्यायनीने पलँगसे उठकर बक्स खोलकर दस रुपये बाहर निकाले और हारानचन्द्रके सामने रखकर कहा—ये ले जाओ।

हारानचन्द्र देर तक सिर झुकाये चुप बैठे रहे। इसके बाद सिर हिलाकर बोले—कुछ नहीं चाहिए।

कात्यायनी जरा हँसी। हाथसे हारानचन्द्रका मुँह ऊपर उठाकर बोली—देखो, जो कुछ जानता न हो उससे कहो—अभिमान करो। ये रुपये न ले जाओगे तो कल तुम सबको उपास (उपवास) करना होगा, यह जानते हो?

"क्यों? उपास क्यों करना होगा?"

"तुम्हारे यहाँ कुछ भी नहीं है—मूँठी माँग भी नहीं।"

"तुमने कैसे जाना?"

"अभी तुमने आप कहा था कि लड़केके मुँहका कौर छीनकर लाया है।"

"और—"

"केवल यही नहीं। तुम इतनी बातें न भी कहते तो भी मैं सब कुछ जानती थी। मैं आप तुम्हारे घर जाकर सब देख आई हूँ।"

"यह क्यों?"

"पहला कारण तो यह है कि औरत जातिका स्वभाव ही यह होता है—यह सब आप ही देखनेकी इच्छा होती है। खासकर हमारी बिरादरी की। घर देख सुनकर आगा-पीछा सोचकर चले बिना हमारा काम नहीं चलता। तुम मर्द जितने भी हो, हम औरत होकर भी उतनी नादान नहीं हैं। तुम लोगोंके स्त्री है, लड़के हैं, सगे-सम्बन्धी हैं, इष्ट-मित्र नातेदार हैं—एक बार ठगे जानेपर फिर एक बार उठ सकते हो—सँभल सकते हो। लेकिन हम—हमारे कोई नहीं है। हम एक बार अगर धोखा खा गई तो फिर उबर नहीं सकेंगी। हम [illegible]

मर जाऊँगी तो किसीको इसपर दया न आयेगी। लोग कहते हैं कि जिसके कोई नहीं, उसके भगवान् हैं। हमें यह भरोसा भी नहीं है। इसीसे तब बीच बहू सावधानीसे आप देख-सुनकर चले बिना कहीं हमारा निबाह हो सकता है! समझे!

जान पड़ता है, नारायणीको क्लेश हो रहा था। वे सब बातें कहते कहते उसका, क्षणभरके लिए ही नहीं, हृदयमें कुछ व्यथाका अनुभव करना नितान्त अस्वाभाविक नहीं है। किन्तु तुरत ही उसने उसपर पर्दा डाल दिया। हरान-चन्द्रके मुखकी ओर देखकर कहा—मैंने जो कहा, सब समझ गये न? ये रुपये अपनी चाचीके हाथमें देना—तो कुछ दिन मजेसे कट जायेंगे। अपने पास न रखना। सुना?

हरानचन्द्रने अन्यमनस्क भावसे गर्दन हिलाकर कहा, "हाँ।"

"रात ज्यादा हो गई है। आज अब कहीं न जाओ। यहीं सो रहो।"

६

सदानन्द चक्रवर्तीको गाँवके आधे लोग 'सदा दादा' और आधे लोग 'सदा पागल' कहते थे। इस हलदपुर गाँवमें ही उनका घर है। उनके पिता कट्टर हिन्दू थे। अंगरेजी म्लेच्छोंकी भाषा है, अंगरेजी पढ़नेसे धर्म नष्ट हो सकता है, इस आशंकासे उन्होंने पुत्रको लिखना-पढ़ना नहीं सिखाया। और पढ़नेकी जरूरत ही क्या? जो दस-बीस बीघे जमीन है, उससे पराई नौकरी न करनी पड़ेगी। फिर बेकार जाति नष्ट करनेसे क्या लाभ? कोई कहता था कि सदानन्द संस्कृत जानता है, कोई कहता था कि नहीं जानता। चाहे जो हो, इस विषयमें मतभेद है। किन्तु वह पागल है, इसमें कुछ भी मतभेद नहीं है। बालक-बूढ़े-औरतें, सभी स्वीकार करते हैं कि सदानन्दमें कुछ थोड़ी-सी सनक है। वह जमीनकी देखभाल करता है, रामप्रसादी* गाने गाता है, मुर्रे चबाता है, इस घर—उस घर घूमता-फिरता है और इसी तरह मनकी मौजमें उसके दिन बीतते रहते हैं। बूढ़ेके नातेकी एक बुआके सिवा संसारमें अपना कहनेको उसके और कोई नहीं। इसीसे गाँव भरके लोगोंको उसमे

---

* रामप्रसाद बंगालके प्रसिद्ध प्राचीन कवि हैं। उनके बनाये गाने बंगालमें बहुत प्रसिद्ध और लोकप्रिय हैं।—अनुवादक।

अपना बना लिया है। उसके सभी आत्मीय हैं, सभीके साथ उसने एक न एक नाता जोड़ लिया है, सभी घरोंमें बे-रोकटोक उसका आना-जाना है। पहले ही कह चुके हैं कि संसारमें उसका अपना कोई नहीं है। बचपनमें ही सदानन्दके पिताने बहुत-से रुपये पण† देकर उसका ब्याह कर दिया था किन्तु भाग्यके दोषसे साल भरके भीतर ही बहू मर गई। तबसे आठ-दस साल हुए, सदानन्द अकेला ही है। चाहे उसके रुपये कमा न कर पानेके कारण हो, और चाहे इच्छा न रहनेके कारण हो, उसने फिर ब्याह नहीं किया। इन लोगोंको काफी रुपये मूल्य देकर ब्याह करना पड़ता था। कोई फिर ब्याह करनेकी बात कहता तो वह हँसीमें टालकर कहता—इतने रुपये कहाँ पाऊँ जो ब्याह करूँ!

आज तीसरे पहर आकाशमें खूब बादल घिरे थे। सारी प्रकृति निश्चल, निस्तब्ध हो रही थी। प्रकृति ऐसा भाव धारण किये थी, जैसे चाहे तो अभी मूसलधार पानी बरसा दे और न चाहे तो शायद अभी और तीन-चार घण्टे पानी बरसाना रोके रहे।

× × × ×

बुआ रामप्रियाने भतीजीको पुकारकर कहा—ओ रत्ना, घरमें एक बूँद भी पीनेका पानी नहीं है। झटपट घाटसे एक कलसी पानी तो ले आ बेटी।

रत्ना कलसी बगलमें दाबकर गाती-नाचती आई। घर आकर दो पग आगे बढ़ते न बढ़ते बादलोंमेंसे बड़े बड़े बूँद गिरने लगे। रत्ना तेजीसे पैर बढ़ाकर चलने लगी। उसी राहमें सदानन्दका घर था। राहके किनारे ही छप्परवाले बरामदेमें बैठा हुआ सदानन्द उस समय तन्मयतासे सुरमें कालीमाँका पद गा रहा था। रत्नाको आते देखकर गाना रोककर उसने कहा—रत्ना, भीग क्यों रही हो?

रत्नाने तनिक हँसकर कहा—तुमने गाना क्यों बन्द कर दिया?

सदानन्द भी हँस दिया। हँसी और गाना आठों पहर उसके मुँह लगे ही रहते थे। सुर बदलके बोला—गाना चल रहा।

---

† बंगालके कुलीन ब्राह्मणोंको तो विवाहमें धन मिलता है, किन्तु छोटी श्रेणीके ब्राह्मणोंमें वरपक्ष कन्यापक्षको रुपये देता है। कन्यापक्ष वरपक्षको जो धन देता है उसे यौतुक या दहेज कहते हैं। वरपक्ष जो धन कन्यापक्षको देता है, वह पण (मूल्य) कहलाता है। —अनुवादक

फिर स्वाभाविक स्वरमें कहा—इस बातको छोड़ो। बेकार न भीगो। यहीं कुछ देर ठहर जाओ।

ललना बरामदेमें आकर खड़ी हो गई।

सदानन्दने उसके मुँहकी ओर कुछ देर ताककर कहा—खड़ी मत रहो, घर जाओ।

ललनाने कहा—वह क्या?

"तुम्हारी घरमें नहीं है। ज्यादा जोरसे बरसने लगा तो जाओगी कैसे?"

ललनाने मनमें सोचा, यह भी ठीक है। वह दो पग आगे बढ़ी, किन्तु फिर लौट आई।

सदानन्दने कहा—लौट क्यों आई?

"कल रात मुझे बुखार आ गया था। इसमें भीगनेसे तबीयत बढ़ सकती है।"

"तो फिर न जाओ, यहीं खड़ी रहो।"

तब सदानन्द अपनी मौजमें गाने लगा—

"कभू तारे पाबे ना बुझि, मिछे हात बाड़ाये दाँड़ाये आछि।
कत व्याकुल व्यथा भरि, तुई की जानबि पाषाणी मा।
आमार केनार बधी बुझल ए बार—"

[अर्थ—मैं समझता हूँ कि उसे कभी नहीं पाऊँगा। (उसे पानेके लिए) व्यर्थ ही हाथ बढ़ाये खड़ा हूँ। कितनी व्याकुल व्यथा भर रहा हूँ—वह तू पाषाणी माँ क्या जानेगी। अबकी मेरी [illegible] —]

ललना अपनी नीचे-नजरकर गाना सुन रही थी। मीठे गलेका मीठा गान उसे बड़ा अच्छा लग रहा था। एकाएक बीचहीमें रुक जानेसे ललना कह उठी—यह क्या, रुक क्यों गये?

"अब नहीं गाऊँगा।"

"क्यों?"

"आगे याद नहीं आता।"

ललनाने मुसकाकर कहा—तो फिर गाया ही क्यों?

"मैं यों ही गाया करता हूँ।"

इसके बाद कुछ देर आकाशकी ओर ताककर बोला—मेघके ऊपर कमल खिलता है, तुमने देखा है?

सुखदाने हँसकर कहा—कहाँ, मैंने तो नहीं देखा, तुमने देखा है?

"हाँ, देखा है।"

"कब देखा?"

"प्रायः ही देखता हूँ। जब आकाशमें बादल होते हैं, तभी देख पाता हूँ।"

सदानन्दके मुखकी गम्भीर मुद्रा देखकर सुखदाको हँसी आ गई। मुँहमें कपड़ा देकर उसने कहा—यह भी कहीं होता है?

"क्यों न होगा? कमल तो जलमें ही खिलता है। बादलमें भी जलका अभाव नहीं है। फिर वहाँ क्यों न खिलेगा?"

"मिट्टी न रहनेपर क्या खाली जलमें कमल खिलता है?"

सदानन्द सुखदाके मुखकी ओर कुछ देर तक ताकते रहनेके बाद बोला—यही ठीक है। इसीसे खिलना रुक रहा है।

सुखदाने फिर कुछ नहीं कहा। वह जानती थी कि पगला सदानन्द दिनमें ऐसी अनेक असम्भव और असंलग्न बातें कहता रहता है।

कुछ देर मौन रहकर सदानन्दने फिर कहा—अच्छा सुखदा, शारदा अब तुम लोगोंके घर नहीं जाता?

सुखदाने दूसरी ओर मुँह फेर लिया। जान पड़ता है, उस समय अपने मुखके भाव दिखाना नहीं चाहती थी। सदानन्दने फिर पूछा—नहीं जाता?

"नहीं।"

"क्यों?"

"सो मैं नहीं कह सकती।"

सदानन्दने फिर गाना शुरू कर दिया।

गाना थम गया किन्तु वर्षा किसी तरह थमना नहीं चाहती। बल्कि आकाशमें बादल और गहरे होने लगे। सुखदाने कलसी उठाकर कमरपर रक्खी।

देखकर सदानन्दने कहा—यह क्या, जाती कहाँ हो?

"घर जाऊँगी।"

"इतने पानीमें जानेसे बुखार चढ़ न आएगा?"

फिर स्वाभाविक स्वरमें कहा—इस बाजेको छोड़ो। बेकार न भीगो। यहीं जरा देर ठहर जाओ।

ललना बरामदेमें आकर खड़ी हो गई।

सदानन्दने उसके मुँहकी ओर कुछ देर ताककर कहा—खड़ी मत रहो, घर जाओ।

ललनाने कहा—यह क्या?

"तुम्हारी छतरी नहीं है। ज्यादा जोरसे बरसने लगा तो जाओगी कैसे?"

ललनाने मनमें सोचा, यह भी ठीक है। वह तो घर जायगी नहीं, किन्तु फिर और आई।

सदानन्दने कहा—और क्यों आईं?

"कल रात मुझे बुखार आ गया था। इसमें भीगनेसे तबीयत बढ़ सकती है।"

"तो फिर न जाओ, यहीं खड़ी रहो।"

तब सदानन्द अपनी मौजमें गाने लगा—

"कभु तार पाबो ना खुँजि, मिछे हात बाड़ाये दौड़ाये आछि।
कत व्याकुल व्यथाय मरि, तुइ कि जानबि पागली मा।
आमार सोनार तरी डुबबे ए बार—"

[अर्थ – मैं समझता हूँ कि उसे कभी नहीं पाऊँगा। (उसे पानेके लिए) व्यर्थ ही हाथ बढ़ाये खड़ा हूँ। कितनी व्यथासे तड़प मर रहा हूँ—यह तू पगली मा क्या जानेगी। अबकी मेरी सोनेकी नाव डूबेगी—]

ललना उसकी मीठ-रसभरी गाना सुन रही थी। मीठे गलेका मीठा गान उसे बड़ा अच्छा लग रहा था। एकाएक बीचहीमें रुक जानेसे ललना कह उठी—यह क्या, रुक क्यों गये?

"अब नहीं गाऊँगा।"

"क्यों?"

"आगे याद नहीं आता।"

ललनाने मुस्कराकर कहा—तो फिर गाया ही क्यों?

"मैं यों ही गाया करता हूँ।"

इसके बाद कुछ देर आसमानकी ओर ताककर बोला—मेघके ऊपर क्या लिखा है, तुमने देखा है?

सुनन्दाने हँसकर कहा—नहीं, मैंने तो नहीं देखा, तुमने देखा है?

"हाँ, देखा है।"

"कब देखा?"

"प्रायः ही देखता हूँ। जब आसमानमें बादल होते हैं, तभी देख पाता हूँ।"

सदानन्दके मुखकी गम्भीर मुद्रा देखकर सुनन्दाको हँसी आ गई। मुँहमें कपड़ा देकर उसने कहा—यह भी कहीं सम्भव है?

"क्यों न सम्भव? कागज तो आकाशमें ही फैला है। बादलमें भी स्याहीका अभाव नहीं है। फिर वहाँ क्यों न लिखेगा?"

"मिट्टी न रहनेपर क्या आकाशमें कागज फैला है?"

सदानन्द सुनन्दाके मुखकी ओर बहुत देर तक ताकते रहनेके बाद बोला—यही ठीक है। इसीसे समझ आ गया है।

सुनन्दाने फिर कुछ नहीं कहा। सभी जानते थे कि पगला प्रायः दिनमें ऐसी अनेक असम्बद्ध और अर्थहीन बातें करता रहता है।

कुछ देर मौन रहकर सदानन्दने फिर कहा—अच्छा सुनन्दा, शारदा अब तुम लोगोंके घर नहीं आता?

सुनन्दाने दूसरी ओर मुँह फेर लिया। जान पड़ता है, उस समयके अपने मुखको वह दिखाना नहीं चाहती थी। सदानन्दने फिर पूछा—नहीं आता?

"नहीं।"

"क्यों?"

"सो मैं नहीं कह सकती।"

सदानन्दने फिर गाना शुरू कर दिया।

गाना थम गया, किन्तु वर्षा किसी तरह थमना नहीं चाहती। क्रमशः आसमानमें बादल और गहरे होने लगे। सुनन्दा जल्दी जल्दी उठाकर कपड़े समेटने लगी।

देखकर सदानन्दने कहा—यह क्या, जाती कहाँ हो?

"घर जाऊँगी।"

"इतने पानीमें जानेसे बुखार चढ़ न जायगा?"

"क्या करूँ !"
कल्पनाके चले जानेपर हारानन्द फिर गुनगुनाने लगा।

७

हारानचन्द्रने जब बीके हाथमें पूरेके पूरे दस रुपये रख दिए, तब झुमराके मुखमें हँसी फूटकर भी फूटने न पाई बल्कि मुरझा गई। उसने सिर झुकाये हुए पूछा—ये रुपये तुमने कहाँ पाये ?

वह भी ये रुपये बीके हाथमें देकर नहीं दे सके। कुछ देर निरुत्तर रहकर बोले—झुमरा, तुम्हें क्या यह जान पड़ता है कि ये रुपये मैं चोरी करके लाया हूँ ?

झुमराका मुख और भी मलिन हो गया। उसके पापी अन्तःकरणमें यह बात शायद एक बार उदित हुई थी किन्तु यह क्या कही जा सकती है ? ईश्वर न करें, किन्तु यदि यही हो तो क्या ये रुपये लेना उचित है ? चोरीका पैसा खानेसे पहले वह अनाहार रहकर मर सकती है—लेकिन और सब लोग ? प्रामाणिक पुत्र और कन्याएँ ? झुमराने समझा कि इस बातकी आलोचना करनेका यह समय नहीं है, इसीसे ये रुपए उसने सन्दूकमें बन्द करके रख दिए।

कुछ कुछ सुख और स्वच्छन्दतासे फिर दिन कटने लगे। हारान मुखर्जी आजकल दफ्तरमें बहुत काम दिखाते हैं। घर आने पर यद्यपि अमर पूछती है कि तू दिन भर कहाँ रहता है रे ? तो हारानचन्द्र कह देते हैं—मुझे कितने ही काम हैं। नौकरीकी तलाशमें घूमता फिरता हूँ।

झुमरा भी अपने मनमें समझती है, यही संभव है क्योंकि अब वह उतना पैसे माँगने नहीं आते—'कम दे देंगे' कहकर अब दो आने चार आने उधारके नाम पर नहीं ले जाते। हारान बाबू कहाँ रहते हैं, यह कोई अगर मुझसे पूछे तो मैं बता सकूँगा, क्योंकि इसे मैं जानता हूँ। वह दिनभर बिना कुछ खाए-पिए, बिना विश्राम किये नौकरीकी उम्मेदवारीमें घूमते हैं। कितने ही सगाके पास जाकर अपने दुःखकी कहानी कहते हैं। आढ़तियोंके पास—यहाँतक कि मामूली दुकानदारोंके पास भी खाता-बही लिख देनेकी प्रार्थना करके काम पानेकी कोशिश करते हैं; किन्तु कहीं भी कुछ ठीक नहीं लगता। इस तरह

अधिकतर सब उन्हें जानते-पहचानते थे, इसीलिए कोई विश्वास करके उनको रखना नहीं चाहता। सन्ध्याके समय हारानचन्द्र सूखा हुआ मुँह लिये घर लौट आते हैं। ज्ञानदा मलिन मुखसे उनसे पूछती है—आज कहीं खाया-पिया?

हारानचन्द्र सूखे मुखपर हँसनेकी चेष्टा करते हैं। कहते हैं—मुझे खानेकी कौन कमी है? मुझे कौन नहीं जानता?

ज्ञानदा फिर कुछ नहीं कहती, चुप हो जाती है।

धीरे धीरे उसकी कल्पीता बस रुपया आ रहा है—रुपये चुकते जा रहे हैं। और दो-एक दिन कट जायेंगे किन्तु ज्ञानदा अपने स्वामीसे मुँह खोलकर यह नहीं कह पाती किसी औरको खानेका उतना भी नहीं चाहता। केवल अपने ही मनमें, जो कुछ पूँजी है उसीका हिसाब लगाया करती है।

आज तीन दिन बाद वही रात बीते धीरे-धीरे स्वामीके दोनों पैर दबाते दबाते, मन ही मन सोच-विचार, तर्क-वितर्क करके ज्ञानदाने लाचारीसे मुँह खोलकर कहा—अब कुछ नहीं है; सब रुपये चुक गये।

हारानचन्द्रने आँखें मूँदकर अत्यन्त साधारण भावसे कहा—इतने रुपये और कितने दिन चल सकते हैं।

और कुछ नहीं कहा। दोनों ही बने गन उसको चुप रहे। ज्ञानदाने सोचा था कि कल क्या होगा—यह वह पूछे न किन्तु पूछ न सकी। बिना काम आज ही अपराधी जैसा चुप रही। उसने सोचा था, सब करते-करते रुपये क्यों चुक जाते हैं, इसके लिए उस पतिकी विरक्ति सिरपर सुननी पड़ेगी। वास्तव ही सिरकी शिकायत शायद वह सच्चाई देनेपर, उसका दोष इसमें नहीं है—यह समझानेका प्रयास करती किन्तु उसके बदले सहानुभूति पाकर उसके मुँहसे बात नहीं फूटा।

दूसरे दिन सबेरा होते-न-होते ही हारानचन्द्र चले गये। ज्ञानदा जैसे नित्य प्रातः स्नान-ध्यान करती थी, करने लगी। उसके नियमित स्नान कर आकर मिट्टीकी शिवमूर्ति बनाकर पूजा करने लगी। केवल ज्ञानदाके हाथ पैर नहीं चलते। मुरझाये हुए उदास कभी इधर कभी उधर बैठकर अन्तमें एक जगह बैठ गयी।

आठ बजते देखकर लल्लाने कहा—मा, तुम अब नहाने-धोने नहीं गईं? दिन तो बहुत चढ़ आया है।

—"अभी बाकी हूँ।"

ललनाने फिर कुछ देर बाद और आकर देखा, उसकी मा उसी जगह उसी तरह बैठी है। विस्मित होकर वह बोली—क्या हुआ है मा?

"कुछ नहीं।"

"तो फिर इस तरह बैठी क्यों हो?"

"और क्या करूँ?"

"यह क्या? नहाओगी नहीं? रसोई न चढ़ाओगी?"

घुमन्ताने अपनी दोनों कातर आँखें कन्याके मुखपर टिकाकर डरते डरते कहा—आज कुछ नहीं है।

"क्या नहीं है?"

"कुछ भी नहीं है। घरमें मुट्ठीभर चावल तक नहीं है।"

ललनाका मुँह सूख गया। बोली—तो क्या होगा मा? लड़के-बच्चे क्या खायँगे?

घुमन्ताने दूसरी ओर मुँह फेरकर कहा—भगवान् जानें।

कुछ देर बाद फिर बोली—ललना, एक बार अपनी किसी सुभाके पास जा न?

"किस लिए मा?"

"अगर वह कुछ दे।"

ललना चली गई। घुमन्ताकी आँखोंसे आँसू बहने लगे। ऐसी बात उसने और कभी नहीं कही—इस तरह भिक्षा माँगनेके लिए कन्याको और कभी नहीं भेजा यही बात उसके मनमें आ रही थी। लज्जा लग रही थी, शायद कुछ रंजिश भी हुई थी। किसके ऊपर? यह पूछनेसे शायद वह स्वामीके मुखकी याद करके ऊपरकी ओर हाथ उठाकर कहती—उनके ऊपर!

माथेपर हाथ रखकर वह वैसेही उसी जगह बैठी रही। लगभग ग्यारह बजनेका समय हो गया। इसी समय उम्मानामकी एक छनके पुन्नके सारे शरीरमें कादा लपेटे लपेटे और पोखरके पानीसे उसके सरसे-पैरतक भरपूर विभूषित करते करते वहीं आकर खड़ी हुई। बोली—मा, खानेको दो।

घुमन्ताने आँख उठाकर उसके मुँहकी ओर देखा; किन्तु कुछ कहा नहीं।

उम्माने फिर कहा—समय हो गया, खानेको दो मा।

फिर भी कुछ उत्तर नहीं मिला।

इस हाथके पुलिंदेको उस हाथमें लेकर ललनाने और भी ज़रा ऊँचे स्वरसे कहा—ऐसी चाल पड़ता है, अभी तक नहीं चली !

सुभदाने सिर हिलाकर कहा—नहीं।

ललनाने गरम होकर कहा क्यों नहीं चली ? तुम शायद देर तक सोती रहीं।

इसके बाद न जाने क्या सोचकर वह रसोईघरमें घुस गई और अत्यन्त विस्मित और क्रुद्ध होकर चिल्लाकर बोली—चूल्हेमें आग तक अभी नहीं पड़ी !

सुभदाने बाहरसे क्षीण स्वरसे कहा—अब चूल्हा जलाऊँगी।

ललना बाहर आकर खड़ी हुई। माका मुख देखकर अबकी बेर वह कुछ अप्रतिभ हुई। फिर पास बैठकर बोली—मा, अब तक कुछ हुआ क्यों नहीं ?

"अब सब होगा।"

"मा, तुम इस तरह उदास क्यों हो ?"

इसी समय कोठरीके भीतरसे रोगी माधवने क्षीण कण्ठसे पुकारा—ओ मा !

सुभदा हड़बड़ाकर उठ खड़ी हुई।

ललनाने खड़े होकर कहा—तुम बैठो मा, मैं माधवके पास जाकर बैठती हूँ।

"अच्छा तू ही जा बेटी।"

घरसे निकलकर ललनाने खिड़कीके द्वारसे [illegible] के घरमें प्रवेश किया। किन्तु विन्ध्यवासिनी वहाँ न थी। पहले ही दिन रातको वह ससुराल चली गई थी। उसे अचानक जाना पड़ा, नहीं तो वह निश्चय ही एक बार सुभदासे मिलकर ही जाती।

मुरझाया मुँह लेकर ललना लौट आई। राहमें किसी तरह उसके पैर आगे नहीं पड़ रहे थे। गांगुलीके घर जाते समय पहले भी लज्जाके मारे आगे नहीं बढ़ रहे थे; किन्तु अब खाली हाथ लौट आनेके समय उसे और भी लज्जा मालूम पड़ने लगी। राहमें एक पेड़के तले वह बड़ी देर तक खड़ी रही। उसके बाद न जाने क्या सोचकर और साहस कर वह [illegible] की ओर चली। पास ही सदानन्द चक्रवर्तीका घर था। बाहर ओसारेके पास सदानन्द एक [illegible] खूब तरहसे [illegible] करके हुक्का पी रहा था। ललना वहीं जाकर खड़ी हुई। सदानन्दने मुँह घुमाकर देखा। फिर कहा—ललना, तुम कैसे आई ?

" बुआ घरमें हैं ?"

" नहीं । अभी अभी कहीं गई हैं ।"

कमला कुछ इधर उधर करके एक पग पीछे हटकर खड़ी हो गई।

सदानन्द कहानीकी पुस्तक छोड़कर कमलाके मुँहकी ओर ताककर बोला—बुआजीसे क्या कुछ काम है ?

" हाँ । "

" वह तो घरमें नहीं हैं । मुझसे कहनेसे क्या काम न होगा ?"

कमला भी यही सोच रही थी। किन्तु सदानन्दके पूछते ही लज्जासे उसका हृदय एकदम सन्न हो गया। घरमें कुछ खानेको नहीं है, इसीलिए आई है— छि छि ! यह बात क्या कही जा सकती है ? इसके लिये भी एक दिन ठीक यही बात सोची थी आज कमलाने भी यही सोचा—तो भी मुँहसे बोल नहीं निकला। जो कभी इस अवस्थामें पड़ा है, वही जानता है कि यह कितना कठिन काम है ! वही केवल समझता कि मनमें आदमीकी छाती यह कहनेमें किस प्रकार धड़कने लगती है कितनी हलचल और घात-प्रतिघात हो जाता है। कहनेके पहले किस तरह जीभकी हर एक नस बढ़ होकर आप ही आप अकड़ जाती है। कमला मुँह खोल कर कुछ कह नहीं पाई किन्तु सदानन्द कैसे समझ गया—कमलाके मुखपर शायद भीतरकी बात झलक आई थी, इसीसे अनुमान करके, हँसकर सदानन्दने उठकर कमलाका हाथ पकड़ लिया। वह पागल है—जानते थे कि सदानन्द पगलेकी मति स्थिर नहीं है। ऐसे अनेक काम वह कर बैठता था, जिन्हें और कोई नहीं कर सकता था। जिन कामोंके करनेमें और लोगोंको संकोच होता था, उन्हें कर डालनेमें शायद वह संकोच नहीं करता था—औरोंको शोभा न देता था वह शायद उसे फब जाता था। इसीसे उसने बेखटके आकर कमलाका हाथ पकड़ लिया। हँसते-हँसते बोला—आज शायद कमलाको अपने घरका हाल मालूम हो गया है ! क्या पागलके यहीं धरना देना है ? फिर हाथ छोड़कर बोला क्या बात है, बताओगी नहीं ?

सदानन्दका कहना स्वर और बातका भाव एक ही तरहका था। वह हँसते हँसते भी अनेक गहरी बात कह देता था, जिसे सुनकर आँखोंसे जल आप ही उमड़ पड़ता है। तब भी कमलाने कुछ नहीं कहा। तबकी सदानन्दने सिर उठाकर बिल्कुल ही गम्भीर भाव धारण करके कहा—क्यों री कमला, कुछ हुआ है क्या?

ललना सिर झुकाकर, आँख पोंछकर, अस्फुट स्वरमें बोली—मुझे एक रुपया दो।

सदानन्दने पहलेकी तरह, बल्कि और भी जोरसे हँसकर कहा—यह बात है! यह बात शायद सदा हाथसे नहीं कही जा सकती! लेकिन रुपये की क्या जरूरत है?

तब भी ललना दूर नहीं हुई। ललना इधर उधर करके, लज्जासे और भी थोड़ा लाल होकर बोली—बाबू घरमें नहीं हैं।

सदानन्दने घरके भीतर घुसकर एकाएक बक्सेसे पाँच रुपये लाकर ललनाके हाथमें थमा दिये। बोला—जो आदमी जैसा आदमी हो, उससे शरमाना होता है। पागलसे क्या शरमाना?

इसके बाद दूसरी ओर मुँह घुमाकर हँसकर बोला—जब कभी कुछ जरूरत हो तब इस पागलके आगे आकर कहना। क्यों, कहोगी तो?

ललनाने देखा, उसके हाथमें बहुत-से रुपये थमा दिये गये हैं। इसीसे उसने कहा—इतने रुपये क्या होंगे?

“रखे रहनेसे सड़ न जायँगे।”

“न सड़ें, हमें इतने रुपयोंकी जरूरत नहीं है।”

ललना रुपये लौटा रही है, यह देखकर सदानन्दने फिर आकर उसका हाथ पकड़ लिया और मधुर भावसे कहा—छिः, लड़कपन न करो। रुपयोंका प्रयोजन न हो तो और दिन आकर लौटा देना। और देखो, यह बात किसीसे न कहना। और अगर कहना ही पड़े तो कहना—सदा पगलेने चार पाँच रुपया ब्याज पर उधार दिये हैं।

दिन इस तरह बीत गया। सबने भोजन किया किन्तु शुभदाने उस दिन अन्न-स्पर्श भी नहीं किया। रासमणिने गालियाँ दीं, ललनाने बहुत बार माँगा, किन्तु किसी तरह उस दिन शुभदासे कुछ खाया न गया।

सन्ध्याके बाद हारानचन्द्र लाल सिर, पैरोंमें घुटनोंतक धूल भरे, घर आये। उनकी धोतीके एक खूँटमें दो सेरके अन्दाज चावल और दूसरे खूँटमें थोड़ा-सा नमक, दो-चार आलू, दो-तीन परवल और ऐसी ही कुछ और चीजें थीं। एक पात्र लाकर उनको खोलकर रखते समय शुभदा रो पड़ी।

सब एक-से नहीं थे — उनमें महीन, मोटे, धुमिया सभी मिले थे। सुनन्दा अच्छी तरह समझ गई कि उसके स्वामी इन लोगोंके लिए द्वार-द्वार भिक्षा माँगकर यह इकट्ठा कर लाये हैं।

८

सन्ध्यासे कुछ पहले माधवने कहा — बड़ी दीदी, जान पड़ता है, मैं अब अच्छा न हो सकूँगा।

सुनन्दाने स्नेहसे माधवके माथेपर हाथ रखकर पुचकारते हुए कहा — क्यों भाई, अच्छे क्यों न होगे! दो-चार दिनमें ही तुम अच्छे हो जाओगे।

"कितने ही इस तरहके दो-चार दिन बीत गये। कहाँ, अच्छा तो नहीं हुआ।"

"अब अच्छे हो जाओगे।"

"अच्छा अगर न आराम हुआ?"

सुनन्दाने उसके दोनों दुर्बल क्षीण हाथ, अपने हाथमें लेकर कुछ गम्भीर होकर कहा — छि, ऐसी बात मुँहपर न लानी चाहिए।

माधव फिर कुछ नहीं बोला। चुप हो रहा।

कुछ देर बाद सुनन्दाने कहा — माधू, कुछ खायगा क्या?

माधवने सिर हिलाकर कहा — ना।

कुछ देर बाद ही औषध खानेका समय हुआ। सुनन्दाने एक छोटे-से काँचके गिलासमें थोड़ा-सा काढ़ा पाचक शीशीसे डालकर माधवके मुँहके पास ले जाकर कहा — पियो।

माधवने पहलेकी तरह सिर हिलाया। दवा वह किसी तरह न खाये-पियेगा। वह ऐसा प्रायः ही करता था, कड़वी कहकर किसी तरह दवा पीना न चाहता था। किन्तु कुछ जोर डालते ही पी लेता था।

"छि, दुष्टता नहीं करते — पी जा।"

माधवने गिलास हाथमें लेकर सारी दवा नीचे डाल दी।

माधवने और कभी ऐसा नहीं किया। सुनन्दा विस्मित हुई, नाराज हुई। बोली — यह क्या माधू!

"मैं अब दवा न खाऊँ-पियूँगा।"

"क्यों?"

"बेकार क्यों खाऊँ? अगर अच्छा ही नहीं होना है तो दवा खाकर क्या होगा?"

"किसने कहा कि अच्छे न होगे?"

माधव चुप रहा।

ललना पास आकर बैठी। उसके शरीरपर हाथ फेरकर बोली—मेरी बात नहीं सुनोगे माधू?

बालक-सुलभ अभिमान (रूठने) से उसकी आँखोंमें आँसू छलक आये। बोला—मेरी बात कोई नहीं सुनता—मैं भी किसीकी बात न सुनूँगा।

"कौन तुम्हारी बात नहीं सुनता?"

"कौन सुनता है? मैं कोई बात पूछता हूँ तो माँ गुस्सा होती है, बापू नाराज होते हैं, बुआ बोलती नहीं, तुम भी नाराज होती हो। फिर मैं क्यों बात सुनूँ?"

माधवकी आँखोंसे आँसू ढुलक पड़े।

ललनाने स्नेहसे आँसू पोंछकर कहा—मैं तेरी बात सुनूँगी माधो।

"तो बताओ, मैं अच्छा न हुआ तो क्या रोज इसी तरह पड़ा रहूँगा?"

"पड़े क्यों रहोगे?"

"तो क्या होगा?"

ललनाके होंठ कुछ काँपकर रह गये। वह कुछ कह नहीं सकी।

माधव कुछ देर उसके मुँहकी ओर ताकता रहा। फिर बोला—बड़ी दीदी, हम लोगोंका छोटा भाई बादू इसी तरह बीमार हुआ था, लेकिन वह अच्छा नहीं हुआ। उसके बाद मर गया। बापू रोए, माँ रोईं, सब लोग रोये। माँ आजतक रोती है किन्तु वह फिर नहीं आया। मैं भी अगर उसीकी तरह मर जाऊँ?

ललनाने दोनों हाथोंसे अपना मुँह ढक लिया। और समय होता तो वह तिरस्कार करके उसका मुँह बन्द कर देती; किन्तु इस समय वह ऐसा नहीं कर सकी। माधव भी कुछ देर चुप रहा। इसके बाद बोला—बताओ न बड़ी दीदी, मर जानेपर क्या होता है?

ललनाने मुँह फेर करके कहा—कुछ नहीं, सिर्फ हम लोग रोयेंगे।

जान पड़ता है, वह उस समय भी रो रही थी।

नहीं जानते, माधव समझ पाया था कि नहीं, किन्तु वह भाव छोड़ेगा नहीं। अनेक दिनोंसे जिस बातको जाननेके लिए वह व्याकुल हो रहा है, वह आज सब जान लेगा। इसीसे उसने फिर कहा—दीदी, मर जानेपर कहाँ जाना होता है?

ललनाने ऊपरकी ओर नजर उठाकर कहा—उस जगह, आसमानके ऊपर।

आसमानके ऊपर! बालकको बड़ा विस्मय हुआ। बोला—लेकिन वहाँ किसके पास रहूँगा?

ललनाने दूसरी ओर ताकते हुए कहा—मेरे पास।

माधवको बड़ा सन्तोष हुआ। हँसकर बोला—तब तो ठीक है। अच्छा वहाँ क्या हम लोगोंका घर है?

"हाँ, है।"

"तो और भी अच्छा है। हम दोनों जने वहाँ मजेमें रहेंगे—क्यों?"

"हाँ।"

ललनाने मन-ही-मन कामना की कि भगवन्, ऐसा ही हो।

माधवने हाथसे उसका मुँह अपनी ओर फेरकर कहा—क्यों दीदी, वहाँ ये भी याद नहीं जानेको मिलता है—क्यों?

"हाँ, मिलता है।"

"वहाँ बहुत-से अनार हैं?"

"हाँ।"

बालकने खुशीसे हँसकर करवट बदली। जैसे इतना आनन्द वह एक करवटमें एक ही तरहसे पड़े रहकर सम्पूर्ण उपभोग न कर पावेगा। किन्तु वैसे ही फिर ललनाकी ओर घूमकर बोला—दीदी, कब चलना होगा?

"माधू!"

"क्या दीदी?"

"माको छोड़कर तू कैसे जायगा?"

"क्यों, मा भी तो जायेगी।"

"अगर न जाय?"

"मैं छुपकर [illegible] जाऊँगा।"

इसकी माधव बड़ा खिन्न हुआ। बोला—दीदी, मा क्या यहाँ कभी न आयगी ?

"आयगी, लेकिन बहुत दिन बाद।"

"कोई हर्ज नहीं। हम पहले जायँगे; न हो, उसके बाद मा आ जायगी।"

कुछ देर चुप रहकर फिर बोला—मासे पूछ न लिया जाय ?

"नहीं। यह बात मासे कहने पर वह भी न जायँगी और मुझे भी न जाने देंगी—समझे ?"

माधवने डरते हुए कहा—तो फिर न पूछूँगा। तुम अब मुझे दवा पिलाकर जाकर खाओ-पियो। मैं लेटा रहूँगा।

दवा पीकर ऊपरसे बताशा खाकर—पानी पीकर माधवचन्द्र सुखी मनसे आकाशकी बात सोचने लगा। वहाँ न जाने क्या क्या करेगा, कितना घूमे फिरेगा, कितने अनार खायगा, दो-चार नीचे माके पास फेंक देगा। अच्छे अच्छे पके अनार आप खाकर छिलके छम्ना दीदीके बीच खींचकर मारेगा उन छिलकोंमें एक दाना भी न छोड़ेगा। छम्ना दीदी उससे माँगेगी—खुशामद करेगी, बहुत माँगेगी तब वह एक फेंक देगा। और भी न जाने कितने सैकड़ों-हजारों की ऐसी सूची मन-ही-मन तैयार करते करते माधव उस रात सो गया।

और छम्ना ! वह भी रातभर किसीको न देख पड़ी। बुआ पतनागि, माता सुभद्रा, छम्ना, हारानचन्द्र, सभी कितना ही पुकारा किये किन्तु उसने किसी तरह अपनी कोठरीका द्वार न खोला। वह वहीं जवाब देती रही—सिरमें बड़ा दर्द हो रहा है मुझे पुकारो नहीं—मैं किसी तरह उठ न पाऊँगी, इत्यादि।

दूसरे दिनसे माधवचन्द्र कुछ और तरहका हो गया है। वह यों ही शान्त स्वभाव था, तदनन्तर और भी शान्त हो गया है। अब दवा खानेमें बिल्कुल आपत्ति नहीं करता। वह न खाऊँगा, वह तो वह न खाऊँगा, वह ला — इस तरहकी जिद एक बार भी नहीं करता। आजकल सदा प्रसन्न प्रफुल्ल रहता है। मा अगर कभी पूछती है कि माधू कुछ खायगा क्या ? वह कह देता है—लाओ।

"क्या हूँ ?"

"जो कुछ हो, वही दे दो।"

जबी दीदी पास बैठी रहती है, तब तो कोई बात ही नहीं। दोनों जने गुपचुप

चुपके बहुत बातें करते हैं, बहुत परामर्श करते हैं। किन्तु किसीके आ जाने पर तत्काल चुप हो जाते हैं।

अब हारानचन्द्रकी गृहस्थीमें वैसा क्लेश नहीं। जब बहुत अनटन आ पड़ती होती है, तभी कमला दो एक रुपये निकालकर दे देती है। शुभदा जानती है कि रुपया कहाँसे आता है; तथापि सोचती है कि रुपया कहाँसे हारानचन्द्र ले आते हैं; हारानचन्द्र सोचते हैं—बुरा क्या है! जब कहींसे आता है, तब कहींसे भी आवे। मैं कहाँसे लाऊँगा! हाँ, एक बात आजकल प्रायः ही उनके मनमें आती है—एक बातके लिए उनके मनमें चिन्ता अवश्य होती है—वह चिन्ता अफीमकी मात्राके सम्बन्धमें हुआ करती है। बीच बीचमें उन्हें भय होता है कि शायद उनका अभ्यास एकदम छूट जा रहा है। और छूट ही जाय तो उसमें क्या है! मन खराब रहने पर भी अफीम कहींसे मिल सकती है! जिस तरहसे हो, और चाहे जो करके हो, जब पेटभर खानेको चार रोटियाँ मिल जाती हैं, तब उस (अफीम) के लिए मन न लगाया करूँगा। अच्छे दिन आनेपर सब फिर हो जायगा। इस समय जैसे हैं वैसे ही रहूँ।

कुछ दिन बाद दयानन्दकी बुआ एक दिन आ गई। दयानन्दसे बोली—भैया, मुझे एक बार काशी-धामके दर्शन करा दो। कुछ ठिकाना नहीं कि कब मर जाऊँ। यह जान ही कौन सकता है! इस जन्ममें कम एक बार काशी-विश्वनाथके तो दर्शन कर लूँ।

दयानन्द बुआकी किसी बातमें आपत्ति नहीं करता, इसमें भी आपत्ति नहीं की। दो-एक दिन बाद काशी जाना तय कर लिया। जानेके दिन सन्ध्या बेला, 'कमला, कमला' पुकारते-पुकारते वह एकदम कोठेपर चढ़ आया। कमला उस समय ऊपर ही थी, दयानन्दको चढ़ते ही उठकर खड़ी हो गई। दयानन्द धोतीके खूँटमें पचासके लगभग रुपये बाँध लाया था, उन्हें खोलकर एक तकियेके नीचे दबाकर रखनेके बाद बोला—हम आज काशी जायँगे। कब लौटेंगे, कुछ कह नहीं सकता। अगर जरूरत पड़े तो इन्हें खर्च करना।

कमलाने विस्मित होकर कहा—इतने रुपये!

साथ ही साथ दयानन्द भी हँसकर बोला—कितने रुपये! पचास रुपये कुछ ज्यादा रुपए नहीं होते। सुननेमें बहुत-से लगते हैं, किन्तु खर्चके समय खर्च करनेमें बहुत नहीं होते।

" किन्तु इतने—"

बात पूरी न करने देकर सदानन्द एक सरहकी हस्तभंगी करके एकदम नीचे आकर रसोईघरमें घुमक्ताके पास आ बैठा।

" चाचीजी, आज हम काशी जा रहे हैं।"

घुमक्ता यह खबर सुन दुखी थी। बोली—कब लौटोगे?

सदानन्दने कहा—यह मैं कैसे बताऊँ? मगर हाँ, भुआजीके काशी देख चुकनेके बाद ही शायद लौट आऊँगा।

घुमक्ताने एक लम्बी साँस छोड़कर कहा—हाँ, लौट आना भैया। आशीर्वाद करती हूँ, कुशल-क्षेमसे रहो—निरापद रहो।

सदानन्द चारसे हँसकर चल दिया। दूसरे दिन कम्पनाने आधके लगभग रुपये अपने पास रखकर आधे माताको देकर कहा मा, जाते समय सदानन्द दादा ये रुपये दे गये हैं।

घुमक्ता आश्चर्यसे आँखें फाड़कर उन्हें गिनने लगी। गिनना समाप्त करके कम्पनाकी ओर देखकर बोली—जान पड़ता है, सदानन्द और जन्ममें हम लोगोंका कोई था।

कम्पनाने सिर हिलाकर कहा—ऐसा ही जान पड़ता है।

" इतने रुपये क्या कोई आदमी दे सकता है?"

कम्पनाने कुछ उत्तर नहीं दिया।

" कम्पना, सदानन्द क्या पागल है?"

" क्यों?"

" पागल नहीं है तो ऐसा क्यों करता है?"

" दुखीके दुःखसे दुखी होना क्या पागलपनका काम है?"

" तो फिर लोग उसे पागल क्यों कहते हैं?"

कम्पनाने हँसकर कहा—यों ही कहा करते हैं।

× × × ×

शायन मुखर्जीके परिवारमें आजकल एक प्रकारसे कोई कष्ट नहीं है। खाना-पहनना अच्छी तरह होता चला जा रहा है; किन्तु साड़-भादोंके दस बने दस तरहकी बातें कहने लगे। किसीने कहा—हारान मालेन नन्दी मधुऔमें दरअ-

रुपया मार लिया है। किसीने कहा — शासन आजकल बड़ा आदमी हो गया है। किसीने कहा—अभी कुछ नहीं—दोनोंमें मेल है बस। घरमें दोनों समय चूल्हा भी नहीं जलता। इसी तरहकी अनेक बातें होती थीं। जो लोग गैर थ, वे कुछ कम कुतूहल रखने लगे, किन्तु जो आत्मीय थे उन्हें ही अधिक कुतूहल था और वे इन मुखर्जी-परिवारके भीतरी-बाहरी छिद्र खोज निकालनेकी चेष्टा करने लगे।

एक दिन तीसरपहरके समय कृष्णा महराजिनने सहसा शासनचन्द्रके घर दर्शन देकर कहा—क्या हो रहा है बहू! खाना-पीना हो चुका क्या!

“ हाँ, अभी छुट्टी पाई है। ”

तब कृष्णा महराजिन तम्बाकूके साथ पान चबाते-चबाते और पीक थूकते-थूकते उत्सुक स्थानपर बैठकर बोली - बहू, आजकल क्या करता है!

सुभद्राने कहा—और क्या करेंगे—नौकरी-चाकरीकी कोशिश करते हैं।

कृष्णा महराजिनने फिर प्रश्न किया— गिरस्तीका खर्च कैसे चल रहा है!

सुभद्राने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया।

कृष्णा महराजिन फिर बोली—लोग कहते हैं कि शासन मुखर्जीने नन्दी बाबूके ढेरों रुपये मार लिये हैं, वह आजकल बड़ा आदमी है—उसे खाने-पीनेकी क्या चिन्ता! किन्तु मैं तो सब हाल जानती हूँ, इसीसे पूछती हूँ, घर-गिरस्तीका खर्च कैसे चलता है!

सुभद्राने कुछ इधर उधर करके कहा यों ही किसी तरह काम-काज चल रहा है।

कृष्णा महराजिनने कहा—हरामजादी छिनाल वह जमुनादासकी पत्नी (धन्नावती) ही तो इस अनर्थकी जड़ है। उसीके कारण तो शासनकी ऐसी गई। जी चाहता है उस कलमुँहीकी नाक काट डालूँ।

पर सुभद्राने इस बातपर ध्यान न देकर कहा— मौसी, तुम्हारा खाना-पीना हो चुका!

“ हाँ हो गया बहन।—उस हरामजादीने ही तो यह सर्वनाश कराया है। शासन मूरख है कि नहीं! इसीसे उसके फंदेमें पड़ गया। अरे तीन हजार रुपये मूने उसमेंसे तो कुछ नहीं सौ-दो सौ रुपये तो भी के हाथमें आकर रखता। सो भी कुछ तो पास रह जाता।

सुभद्राने मन मसोस लिया पर नौकरी आज कहाँसे क्या मिलता था!

“और क्या बताऊँगी बहन! आज देर हो गई थी, इसीसे दाल-भातके सिवा और कुछ नहीं बनाया।—हाँ, सो उस मुँहजलीको क्या तनिक भी परलोककी चिन्ता है! हारानने जाकर दो रुपयोंके लिए जब हाथ जोड़े, पैरों पड़ा, तब हरामजादीने घरके बाहर निकाल दिया। किन्तु भगवान् क्या नहीं हैं! वह सब देखते हैं! तूने बामनकी लड़कीको पैसे पर बिगाड़ा है, उस जैसी सती-लक्ष्मीको पैसे समझा है, उसका दण्ड क्या नहीं पायेगी! बहन, तू देख लेना, मैं कहती हूँ—

शुभदा चटपट कर उठी—ननँदजी, भला बिन्दो इस तरह अचानक ससुराल क्यों चली गई—कुछ जानती हो!

“सुनती हूँ, उसके ससुरको अचानक रातको कष्ट हो गया था।—अच्छा अब तू लड़की ब्याहनेका कैसा बन्दोबस्त करेगी!

“मैं और क्या करूँगी! ईश्वर जो करेंगे वही होगा।”

कृष्णा महराजिन एक लम्बी साँस छोड़कर बोली—सो तो होगा ही। लेकिन चिन्ताके ऊपर चिन्ता है यह तेरी छोटी लड़कीकी। धीरे धीरे वह बड़ी हो गई—अब उसका ब्याह किये बिना देखनेमें भी अच्छा नहीं लगेगा और लोग भी चार तरहकी बातें कहेंगे। इसका कुछ उपाय हो रहा है!

शुभदा जब मुरझाये उदास चेहरेसे लम्बी साँस छोड़ रही थी, उसी समय ललना वहाँ आकर उपस्थित हुई। ललनाके बारेमें महराजिनकी बात उसने कुछ सुन पाई थी, और कुछ अनुमान करके उसने अच्छी तरह समझ लिया कि चाहे अच्छे दिन हों चाहे बुरे दिन, कंगालीके घरमें क्वाँरी लड़कीका ब्याह किये बिना काम नहीं चलेगा। सम्भव है कि जातिच्युत होना पड़े।

९

कृष्णपक्षकी एकादशीकी रात आधी बीत गई है। गंगातटके आगे जंगलसे घिरे एक टूटे हुए शिव-मन्दिरके चबूतरेके ऊपर एक बाईस-तेईस बरसका युवक बेमतलबकी तरह देखता हुआ बड़ी देरसे बैठा हुआ है।

युवकका नाम सारदाचरण राय है। हलदपुर गाँवके एक बड़े आदमीकी यह एकमात्र सन्तान है। युवकने कहाँ तक लिखा-पढ़ा था, यह तो हम कह नहीं

सकते, किन्तु यह कह सकते हैं कि वह विचक्षण, बुद्धिमान् और कामकाजमें निपुण है। वह पिताका सब कारोबार और कामकाज वही देखता है। माता जीवित नहीं है। जब तक वह जीवित थी, तब तक हारान मुखर्जीके घरसे इन लोगोंकी बहुत घनिष्ठ आत्मीयता थी। रत्नमणि और शारदाकी माताओंमें अत्यन्त प्रीति थी। अब शारदाकी मा भी नहीं रही और वह आत्मीयता और मैत्री भी जाती रही। विशेषकर शारदाचरणके पिता रामलोचन बाबू गरीबके साथ किसी तरहका सम्बन्ध रखना युक्तियुक्त नहीं समझते।

यहाँ पर थोड़ी-सी ललनाकी बात कह दें; क्योंकि इस कहानीमें हमें उसकी बहुत आवश्यकता होगी। ललना जब बालिका थी, तभीसे शारदाके साथ उसका बहुत हेलमेल था—दोनोंमें बाल-सुलभ स्नेह था। तब हारान बाबूकी दशा इतनी बुरी न थी। थोड़ी औकातका आदमी जितना कर सकता है, उतनी धूमके साथ हारानने बड़ी लड़की ललनाका ब्याह छोटी उम्रमें ही किया था किन्तु भाग्य-दोषसे ललना दो सालके भीतर ही विधवा होकर घर लौट आई। उस समय भी शारदाचरणको वह प्यार करती थी। वह प्यार कम नहीं हुआ उत्तरोत्तर बढ़ने ही लगा। क्रमशः दोनोंकी अवस्था बढ़ने लगी क्रमशः, दोनों ही यह समझने लगे कि यह प्यार परिणाममें सुखदायक न होगा। क्रमशः ललना यह प्यारका तूफान धीरे-धीरे बन्द कर देने लगी। वह अब शारदाके पास नहीं जाती, उससे आनेके लिए नहीं कहती, अब पहलेकी तरह प्यार नहीं जताती, और छिपाकर पहलेकी तरह पत्र नहीं लिखती। यह सब जान-सुनकर शारदाचरण बड़ी मुश्किलमें पड़ गया है। पहले उसने ललनाको बहुत समझाया बहुत आरजू की, अनेक युक्तियाँ दिखाईं, पर ललनाने जैसे अपने मनमें ठान ली थी। एक दिन ललनाने स्पष्ट ही कह दिया कि उसे अब यह सब अच्छा नहीं लगता।

शारदाचरणको भी उस दिन क्रोध आ गया। उसने कहा—अगर अच्छा नहीं लगता तो इतने दिन क्यों अच्छा लगा?

“ उतने दिन मैं छोटी थी। अब सयानी हो गई हूँ। ”

“ बड़े होने पर शायद अच्छा न लगना चाहिए ? ”

“ नहीं। ”

“ लेकिन सोच-समझकर देखा—”

बात पूरी न होने देकर बीच ही में लखना कह उठी—अब और सोचने-समझनेकी ज़रूरत नहीं है। तुम मुझे बुरी सलाह न देना।

शारदाचरण चिढ़कर कह उठा—मैं शायद तुमको बुरी सलाह देता हूँ!

"देते नहीं तो और क्या।"

"देता हूँ!"

"देते हो।"

"तो आजसे बात सब समाप्त कर दूँ।"

"अच्छा तो है।"

"इस जन्ममें मैं अब तुमसे बात नहीं करूँगा।"

"न करना।"

फिर दोनों अपनी-अपनी राह चले गए। राहभर शारदाचरण गरजता-बरसता गया और लखना सारी राह आँसू पोंछते-पोंछते गई।

यह आज चार साल पहलेकी बात है। चार साल बाद आज फिर शारदाचरण लखनाकी राह देखता उस टूटे मन्दिरमें बैठा है। पहलेकी वह बात उसे एक तरहसे भूल ही गई थी, कमसे कम धुंधली पड़ रही थी किन्तु लखनाने ही फिर आनेका अनुरोध करके यहाँ बुलाया है। इसीसे पहलेकी बातें एक-एक करके उसके मस्तिष्कमें आने लगीं। कोई कहता है कि बचपनका प्रेम नहीं पकता। कोई कहता है कि बचपनका प्रेम दृढ़ नहीं होता। कोई कहता है कि दृढ़ होता है। चाहे जो हो, इस विषयमें कुछ निश्चित नहीं है। सभी प्रकारका परिणाम हो सकता है। किन्तु कुछ भी हो, इस बचपनके प्रेममें एक बार हमेशाके लिए हृदयके भीतर रह जाती है। चाहे जिस तरह उसकी जड़को उखाड़ क्यों न फेंका जाय, कच्ची-सी, छोटी-सी इसकी जड़ शायद ढूँढ़नेसे हृदयकी मट्टीके कई हाथ नीचे मिल ही जाती है।

शारदाचरणको अनेक बातें याद आने लगीं। आज चार साल बाद वह फिर आवेगी, पास बैठेगी, बात करेगी। शारदाचरणका हृदय भीतर भीतर जैसे कुछ सिहर उठा; आनन्दसे जैसे कुछ रोमांच हो आया। किन्तु क्यों? क्यों आवेगी वह? अब मुझसे उसका क्या सम्बन्ध है?

दिनके लगभग एक बजेका समय होनेको आया। एक तो धूपसे [illegible]

हुए उसी राहमें आती देख पड़ी। शारदाचरणने सोचा — क्या ललना है? ललना ही तो है। किन्तु अब बड़ी हो गई है।

ललना आकर पास खड़ी हुई। शारदाचरणने संकोच छोड़कर कहा—बैठो।

तब बहुत दिनके बाद दोनों जने चाँदनीके क्षीण प्रकाशमें, टूटे मन्दिरके चौतरेपर आमने-सामने बैठे। बहुत देर तक किसीके मुँहसे बात नहीं निकली। इसके बाद साहस करके शारदाचरणने कह डाला—मुझे यहाँ क्यों बुलाया है?

ललनाने सिर उठाकर कहा—मेरा कुछ काम है।

"क्या काम है?"

"बताती हूँ।"

फिर बड़ी देर तक सन्नाटा रहा। शारदाचरणने कहा—क्यों, बताया नहीं?

"बताती हूँ। पहले तुम मुझे प्यार करते थे, अब भी क्या प्यार करते हो?"

प्रश्नके ढंगसे शारदाचरणको बड़ा विस्मय हुआ। उसने कहा—अब इस बातसे क्या काम?

"काम है, तभी तो पूछती हूँ।"

"अगर कहूँ कि अब भी प्यार करता हूँ?"

ललनाने जरा मुसकराकर-सरल भावसे कहा—मुझसे ब्याह करोगे?

शारदाचरण जरा पीछे हट गया। बोला—नहीं।

"क्यों नहीं करोगे?"

"तुम्हारे साथ ब्याह करनेसे मेरी जाति चली जायगी।"

"भले ही चली जाय।"

"खाऊँगा क्या?"

"खाने-पीनेकी चिन्ता तुम्हें न करनी होगी।"

"किन्तु पिता राजी न होंगे।"

"राजी हो जायँगे। तुम तो उनकी एकमात्र सन्तान हो। तुम चाहो तो उनको राजी कर सकोगे।"

कुछ देर चुप रहकर शारदाचरणने कहा—तो भी यह ब्याह नहीं हो सकता।

"क्यों नहीं हो सकता?"

"इसके अनेक कारण हैं। पहले तो पिताके सहमत होने पर भी तुमसे ब्याह

करते ही हम जातिसे बाहर कर दिये जायेंगे। जाति गँवाकर इस शहरमें रहना हमारे लिए सुखदायक न होगा। फिर मेरे पास इतना धन भी नहीं है कि मैं तुमको लेकर कहीं विदेशमें जा बसूँ। दूसरे, जो समाप्त हो गया वह समाप्त ही रहे—यह मेरी इच्छा भी है और इसीमें मंगल भी है।"

ललना कुछ देर चुप रहकर बोली—तो फिर ऐसा ही सही। लेकिन तुम क्या मेरा एक उपकार करोगे?

"कहो। कर सकूँगा तो अवश्य करूँगा।"

"तुम कर सकते हो, लेकिन करोगे या नहीं—कह नहीं सकती।"

धारावल्लभने जरा हँसकर कहा—बताओ, मैं भरसक चेष्टा करके देखूँगा।

"मेरी बहन कमलासे ब्याह कर लो।"

धारावल्लभने कुछ हँसकर कहा—क्यों, उसके लिए क्या वर नहीं मिलता?

"कहाँ मिलता है? हम गरीब हैं। गरीबके घरमें कौन लड़की ब्याह करेगा? केवल यही बात नहीं है। हम कुलीन ब्राह्मण हैं; छोटे कुलमें ब्याह देनेसे शायद लड़का मिल सकता है। लेकिन तब कुलीनताको तिलांजलि देनी होगी। तुम हमारे बराबरके कुलीन हो। तुम ब्याह कर लो तो हमारी बात बन जाय। बोलो, ब्याह करोगे?"

"मैं पिताकी आज्ञाके सम्पूर्ण अधीन हूँ। उनका मतामत जाने बिना मैं इस बारेमें कुछ भी न कह सकूँगा।"

"तो उनकी अनुमति लेकर ब्याह करो।"

"जहाँ तक मैं जानता हूँ, वह इस ब्याहके लिए अनुमति नहीं देंगे।"

ललनाने उदास होकर कहा—क्यों नहीं देंगे?

"तो तुमसे साफ ही कह दूँ, छिपानेसे कोई फल नहीं। मेरे पिता धनके लोभी हैं। उनकी इच्छा है कि मेरे ब्याहमें कुछ पैसा पैदा कर लें। तुम लोग अवश्य ही कुछ न दे सकोगे और इसीसे यह ब्याह न होगा।"

ललनाने कातर होकर कहा—हम गरीब हैं, देनेको कहाँ क्या पायेंगे? और तुम लोगोंको धनकी जरूरत ही क्या है? यथेष्ट रुपया-पैसा तो है।

धारावल्लभने दुःखित भावसे जरा मुस्कराकर कहा—यह बात मैं समझता हूँ, लेकिन वह नहीं समझेंगे।

"तुम समझाकर कहोगे तो निश्चय ही समझेंगे।"

"मैं केवल एक बार कहूँगा। बारबार न कह सकूँगा।"

कमलाने बहुत ही उदास होकर कहा—तो फिर कैसे होगा?

"मैं क्या करूँ—मेरे वशकी बात नहीं है।"

"जान पड़ता है, तुम्हारी ब्याह करनेकी इच्छा नहीं है।—देखो, छलना जैसी लड़की तुमको सहजमें नहीं मिलेगी। वह सुन्दर है, बुद्धिमती है, कामकाजी है। इसके सिवा एक गरीब आदमीका इससे यथेष्ट उपकार होगा, एक ब्राह्मणकी जाति और कुलकी रक्षा होगी। बोलो यह ब्याह तुम करोगे?"

"पिताजी जो कहेंगे, वही करूँगा।"

"आज तुमसे एक बात कह दूँ। शायद इस जन्ममें फिर कभी कहनेका अवसर न पाऊँगी, इसीसे कहती हूँ। तुमसे कभी मैंने कभी नहीं की, आज भी नहीं करूँगी। एक बात खोलकर कह जाऊँ। देखो, मैं तुमको लड़कपनसे प्यार करती आई हूँ, अब भी प्यार करती हूँ। यह बात एक बार तुमसे कही थी—आज फिर, बहुत दिन बाद एक बार आखिरी बार कहती हूँ। तुमने मेरा एक-मात्र अनुरोध—शायद अन्तिम अनुरोध है—नहीं रक्खा। जो होनेका था, हुआ; अब ऐसा कभी न होगा। व्यर्थ तुमको मैंने इतना क्लेश दिया, इसके लिए क्षमा करो।"

शारदाचरणने मन ही मन क्लेशका अनुभव किया। कमला सच्ची बात कह रही है—यह समझकर बोला—पिताजीसे इस बारेमें अनुरोध करूँगा।

कमलाने भौंहें बिना जाने-जाते ही कहा—करना।

"किन्तु मैं पिताजी आज्ञाके अधीन हूँ।"

कमलाने चलते-चलते ही कहा—तो तो तुम सुखी हो।

"अगर कुछ कर सका तो तुमको बताऊँगा।"

"अच्छी बात है।"

"कमला, मुझे माफ कर दो।"

"कर दिया।"

१०

“ मेरा ‘ नक्श ’ * है—लाओ भैया चार आने पैसे ” — ताश बाँटनेवालेके हाथमें चार आने पैसे देकर गिनकर हारानचन्द्रने धोतीके खूँटमें बाँध लिये ।

“ मामले या दो — यह आठ आने अपनी समझ ” — कहते हुए हारानचन्द्रने सामने सैकड़ों रुपयोंसे भरी चटाईपर ढालते हुए रखकर ताशका पत्ता हाथमें लिया । सभी साथ खेलनेवालोंने उत्कंठित भावसे अपना अपना ताश देखना शुरू किया । इसमें बस दो-तीन हाथ अपनी जगहसे उछलकर हारानचन्द्र बोल उठे — फिर ‘ नक्श ’ है — लाओ तो बच्चू एक रुपया । बाँटनेवालेने हारानचन्द्रको रुपया देकर उनके सामने ताशकी गड्डी फेंक दी । और सब खिलाड़ी जरा-सी सूखी हँसी हँसकर अपनी-अपनी तहबील खोलकर पैसे निकालने लगे ।

“ और चाहिए—और चाहिए—और चाहिए ! ”

“ बस करो—और नहीं । ”

“ पत्तेपर एक बाजी । ”

“ लड़ जा, लड़ जा बचा — ए यह देखो मेरा फिर नक्श है । ”

हारानचन्द्र जब उठे तब प्राय रात्रि समाप्त हो गई थी । उनकी चादरकी खूँट उस समय रुपये-पैसोंके बोझसे काफी भारी हो रहा था । उस रातको घर जाना नहीं हुआ । दूसरे दिन भी इस दूकान — उस दूकानपर बैठते-उठते दोपहर बीत गई । लगभग चार बजे तीसरे पहर वह घर आये । उस समय उनकी आँखें बेहद लाल हो रही थीं । मुँह, नाक, छाती, चादर कहाँ तक कि सारे शरीरसे गाँजेकी दुर्गन्ध आ रही थी । हारानचन्द्र स्नान करके भोजन करने बैठे । उस समय शुभदाने सामने बैठकर कहा — आज बड़ी देर हो गई ।

---

* नक्श एक तासके खेलका नाम होता है जिसमें पत्तोंकी बुंदकियोंसे हार जीत होती है । बुंदकियोंका जोड़ ११ होनेपर—जैसे एक दहला, एक इक्का और एक दुक्की या एक छक्का और एक तिक्की एक चौका—नक्श कहलाता है । नक्शवाला जीत जाता है । ग्यारहसे कम बुंदकियोंमें भी खेल जाया जाता है । तब जिसकी बुंदकी ज्यादा होती है वह जीतता है । बुंदकी जब ११ से अधिक हो जाती हैं तब जिसकी [illegible]

हारानचन्द्रने कहा—खाओ, क्या करूँ—कामके मारे देर हो जाती है। तुमने क्या अभी तक कुछ नहीं खाया-पिया?

शुभदा चुप हो रही। क्या कहती?

हारानचन्द्रने फिर पूछा—नहीं खाया?

शुभदाने कहा—अब खाऊँगी।

हारानचन्द्रने दुःखित होकर कहा—यह तुम्हारा बड़ा अन्याय है। मेरा कुछ ठीक नहीं है। अगर दिनभर न आऊँ तो क्या तुम यों ही उपवास किए बैठी रहोगी?

दो-एक कौर भात मुँहमें डालकर हारानचन्द्रने शुभदाकी ओर देखते हुए कहा—कल सबेरेके समय तुमने मुझसे कुछ रुपये माँगे थे न?

शुभदाने समझ न पाकर कहा—कहाँ, मैंने तो नहीं माँगे।

"नहीं माँगे! मुझे ख्याल था कि तुमने माँगे थे।"

फिर ज़रा हँसकर बोले—कल न माँगे सही, दो दिन बाद तो माँगना ही होगा—यह एक ही बात है। मेरी उस चादरके खूँटमें आठ रुपये बँधे हैं, उनमेंसे पाँच रुपये तुम ले लो।

शुभदाने सिर हिलाकर कहा—अच्छा।

वह आज बहुत विस्मित हुई। बहुत दिनोंसे कभी ऐसा नहीं हुआ कि हारानने इस तरह अपनी ओरसे बिना माँगे कुछ दिया हो। भोजन आदि समाप्त होनेपर शुभदाने कहा—ये रुपये तुमने कहाँ पाये?

आज हारानचन्द्रके मुखपर हँसी छूटी। बोले—अभी हम लोगोंको रुपयोंके लिए चिन्ता नहीं करनी पड़ती। मर्दोंके पेटमें अगर बुद्धि रहती है तो उनके लिए सारी दुनियामें रुपया बिखरे पड़े रहते हैं। समझीं?

शुभदाने क्या समझा, वही जाने; किन्तु उसने कुछ प्रतिवाद नहीं किया।

ऊपर लिखी घटनाके बाद दो महीने बीत गये हैं।

आज सन्ध्याके समय शुभदाने ललनाके पास बैठकर बहुत ही मलिन होकर कहा—ललना, आज क्या कुछ नहीं है?

"कुछ भी नहीं है माँ।"

कितनी ही बार तूने यही बात कही है; किन्तु फिर दो-चार आने पैसे

निश्चय ही दिये हैं। देख तो बेटी, अगर कुछ हो; नहीं तो रामको एक बूँद पानी भी किसीके मुँहमें न जायगा।

माताका कातर मुखड़ा देख और आकुल-कातर स्वरको सुनकर कमला रो पड़ी, बोली—कुछ भी नहीं है मा। तुम्हारे पैर छूकर कहती हूँ—कुछ नहीं है।

तब दोनों ही बैठी रोने लगीं। कमलापर थोड़ा-कुछ अविश्वास-जैसा कर बैठनेके कारण सुमता रोने लगी; किन्तु कमलाके रोनेका और ही कारण था। वह कारण यह था कि पहले कई बार 'कुछ नहीं है' कहकर भी कुछ दे सकी थी किन्तु आज वास्तवमें ही कुछ नहीं दे सकी, व्यासानन्दके दिये हुए पचास रुपयोंका आखिरी पैसा भी आज सबेरे खर्च हो गया। अब लोग क्या खायेंगे, किस तरह काम चलेगा; खानेको न दे सकनेके कारण माके मनकी क्या दशा होगी; सबेरे फिर किसीके पास भीख माँगने जाना होगा—यही सब सोचकर उसकी आँखोंमें आँसू आ गये। बिन्दो थी, वह भी अब यहाँ नहीं है; व्यासानन्द था, वह भी यहाँ नहीं है। केवल इतना ही नहीं, आज दो दिनसे हाराननन्दनकी भी शक्ल नहीं देख पड़ी। सम्भवतः वह था तो मदकके अड्डोंमें होगा या जुएके अड्डोंमें।

महीना भरसे हाराननन्दनके बारेमें क्या कहें। वह गाँजा मदक और दम लगाते थे, शराब पीते थे, यथासाध्य पैसा खर्च करते थे, दो-चार आने पैसे सुमताके हाथ पड़ जानेपर, बहाना बनाकर माँग लेते थे बिल्कुल ही निरुपाय होनेपर मार्गमें पैठ समझकर, देह भरमें राख लपेटकर, ब्राह्मण-सन्तानकी अन्तिम वृत्ति—भिक्षा माँगनेका पेशा अख्तियार करते थे; किन्तु जुआ कभी नहीं खेला। अब जुआ भी खेलने लगे हैं। जुआ खेलनेमें पहले-पहल जैसा हुआ करता है—अर्थात् दो-चार पैसेका लाभ होता है, वैसा ही उनका भी लाभ हुआ। पहले कुछ कुछ वह जीतते रहे; किन्तु जैसे जैसे दिन बीतने लगे, वैसे वैसे उनका भाग्य भी उन्हें धोखा देने लगा। सुमताके जिस दिन वे पाँच रुपये उन्होंने लिये थे, उसी दिनसे उनका पाँसा पलट गया। सब माल सभी हार। उसके बाद उन्होंने कुछ भी न पाया हो, यह बात नहीं है। कभी कभी कुछ पा जाते भी थे। लेकिन उस आमदनीसे अपना अपना पल्ला ही भारी पड़ जाता था। अब यमुनाघाटमें उनका दिखना भी विस्मयजनक हो गया है। उसमें विजय भी कभी देर होती है, वहीं किसी-न-किसी अड्डेमें उनका अड्डा जम बैठता है —

आना, दो आने, चार आने, इस तरह प्रत्येक परिचितसे कम देनेका वादा करके उन्होंने कर्ज ले रखा है। हर एक दूकानदारके चार आने, आठ आनेके कर्जदार हैं वह। इन्हीं सब कारणोंसे आजकल वह जमुनापुलामें बहुत कम देख पड़ते हैं। कुछ अधिक रात गए सड़कके मोड़पर लोग कहनेसे यहाँ एक कोनेमें यह दिखाई पड़ते हैं। और कुछ अधिक रात होनेपर दूकानके मोड़ पर चोरोंसे ओझलकर उसके भीतर घुसते उन्हें बीच बीचमें देखा जाता है। आजकल उन्हें अधिक रात नहीं बितानी पड़ती है। पैसा पास न होनेके कारण आप नहीं खेल सकते, किन्तु दूसरोंको खेलकी चाली सिखाकर बीच-बीचमें दो-चार पैसे गुरुदक्षिणा या इनामके बना लेते हैं। खेलमें बैठकर कोई उठना नहीं चाहता। हारानचन्द्र उस समय तमाखू, सरबत वगैरह पिलाते हैं। खेलनेवालोंकी तरफदारी करके, दो बातें कहकर, दो-चार दिल्लगी करके, हाथमें अनेक लपेटकर, दो-चार बार कुल्ला-कुल्ला करके, किसी प्रकार मन रखकर अफीमकी आधा आने दाम कुछ ले लेते हैं। जिस दिन कुछ अधिक कमा लेते हैं, उस दिन आप ही दो हाथ खेलने बैठ जाते हैं। या तो कुछ पा जाते हैं, नहीं तो उनकी उस कमाईको कौड़ियाँ खा जाती हैं। दो-चार आने जिस दिन होते हैं उस दिन उनको कौन पा सकता है! सड़ककी दूकानमें आकर वही पुरानी चालसे कुर्सी बनाकर बैठ जाते हैं। अनेक लोगोंका तथा अमीर आदिके ऊँचे ओहदे छोड़कर घुमताके गुरुकी याद आ जानेपर उठकर घरमें आकर उपस्थित होते हैं। यहाँ तो खानेके लिए सब मौजूद ही है। घुमताकी कमाईकी कमी चुकेगी नहीं—उनकी घुमता साक्षात् अन्नपूर्णा है, उसका हाथ कभी खाली नहीं होता। किसीके लिए न हो, उनके लिए मुट्ठीभर अन्न तो रखा ही रहता। किन्तु घर आते समय उन्हें कुछ कठिनाई होती है। जैसे कुछ कुछ लज्जा आती है; घरके पास पहुँचनेपर पैर जैसे उस तरह तेजीसे उठना नहीं चाहते। अन्तमें घरके भीतर घुसकर वह बैठे और अधिक संकोचमें पड़ जाते हैं। घुमता जिस तरह पैर धोनेके लिए जल ले आती है, जिस तरह पैर पोंछ देनेके लिए आती है, वैसे रूखे हुए मुँहसे भोजनकी थाली सामने रखकर चुपचाप बिल्कुल चुप उदास बैठी रहती है, उससे हारानचन्द्रका मन भी न जाने कैसा होने लगता है; भोजनके कौर उस तरह गलेमें पेटके भीतर उतरना नहीं चाहते जैसे बीचमें अटकने लगते हैं। चाहे पाँच बजे हों और चाहे रातके तीन बजे हों—हारानचन्द्र रोज

पाते हैं कि प्रमदा बिना खाये, बिना विश्राम किये उनके खानेकी थाली सामने रखे एक ही तरहसे बैठी है। एक बार यह भी नहीं पूछती कि इतनी देर क्यों हुई? इतनी रात क्यों की? उसका विरस मौन मुखसे ही उनको अधिक व्यतिव्यस्त कर डालता है। वह समझते हैं कि पति होने पर भी वह नालायक हैं इतनी श्रद्धा, इतनी भक्तिके योग्य नहीं हैं। इसीसे वह इतना यत्न, इतना आदर स्वच्छन्द भावसे सहजमें उपभोग नहीं कर पाते। वह देख पाते हैं कि एक आदमी लगातार अपराध करता जा रहा है और एक आदमी बराबर क्षमा करता जाता है। इसीसे गैरहाजिर और बदकर्मी होने पर भी उनकी आँखें लज्जासे नीची हो जाती हैं। प्रमदा एक बार भी तिरस्कार नहीं करती, एक बार भी क्रोध नहीं करती, एक बार मुस्कुराकर भी यह प्रकट नहीं करती कि तुम ऐसा न करो, अब मुझसे तुम्हारी ये हरकतें सही नहीं जातीं। हारानचन्द्रको जान पड़ता है, जैसे उन्हें नित्य अपना विचार आप ही करना पड़ता है। नित्य नित्य ऐसे काम करके अविचार अन्याय करनेमें बीच बीचमें उन्हें संकोच मालूम पड़ता है। चाहे जो हो, इसी तरह दिन बीत रहे थे।

आज बहुत रात गये हारानचन्द्र घरमें आकर उपस्थित हुए। घरके भीतर प्रवेश करके आज उन्हें कुछ और तरहका लगा। आज प्रमदा पैर धोनेके लिए पानी लेकर नहीं आई। निर्दिष्ट स्थानपर खानेके लिए लेकर कोई बैठा न था। एक कोनेमें एक दीपक बहुत धीमा धीमा टिमटिमा रहा था। दीपककी बत्ती बढ़ाने जाकर हारानचन्द्रने देखा, उसमें तेल ही नहीं है। वह डरे। आज दो दिनसे वह घर नहीं आये, इसी बीचमें कोई दुर्घटना तो नहीं हो गई? खाटके एक सिरेपर बैठकर हारानचन्द्र अपने मनमें न जाने क्या क्या आकाश-पाताल सोचने लगे।

सबेरा होनेको आया, तो भी कोई उन्हें देख नहीं पड़ा। हारानचन्द्र कुछ घबराकर सैकड़ों जगहसे फटे अपने कुर्ते हाथमें लेकर चुपचाप घरसे बाहर निकल आये।

उनका इरादा यह था कि घरका कोई देखने न पाये और वह चल पावें। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। चौखटके ऊपर प्रसन्नमयी बैठी थी। इतने सबेरे वह कभी नहीं उठती किन्तु आज न जाने क्यों उठकर बाहर आ बैठी थी। बापको देखते ही वह चिल्लाकर कह उठी—बाबू, तुम कब आये?

हारानचन्द्र बहुत ही झेंपते हुए बोले—कल खाऊँगा।

उमाने कहा—अच्छा बाबू, तुम्हारी कैसी अकिल है, बताओ तो! कल मा, बुआ, बड़ी दीदी, किसीने एक बूँद पानी भी पीनेको नहीं पाया और तुम चुपचाप बड़े हाथमें ले करके भागे जा रहे हो! आज हम लोग क्या खायेंगे— बताओ तो!

हारानचन्द्रको ध्यान पड़ा, उमानामनीने जैसे उनका सिर ही काट लिया। हाथके बड़े आपसे आप खिसककर नीचे गिर पड़े। सिटपिटाकर कुछ देर खड़े रहकर हारानचन्द्रके मुँहसे निकला—अच्छा किसीने नहीं खाया!

उमाने और भी चिल्लाकर पुकारा—ओ बुआजी, सुनती हो बाबूकी बातें! मैं कैसे झूठ कहती हूँ! कल रात भर मा और बड़ी दीदी रोती रही हैं—यह तुम भला कैसे जानोगे बाबू! खाली खानेके लिए आ जाते हो—इसके सिवा हम लोगोंके साथ तुम्हारा कोई नाता ही नहीं है।

हारानचन्द्र खड़े न रह सके। अकेला थोड़ा हाथसे उठाकर तेजीसे चल गये। उमा और एक बार चिल्ला उठी—अरे बाबू भाग गये।

उमा बालिका है, बुद्धि कम है, उसपर बड़ी ही मुँहफट है। किसे क्या कहना चाहिए, कब क्या कहना चाहिए, यह उसने कभी सीखा नहीं। ज्ञानदा अब तक आड़में खड़ी सब बातें सुन रही थी। पिताके चले जानेपर वह धीरे धीरे उमाके सामने आकर बोली—उमा, तुम्हारे क्या तनिक भी बुद्धि नहीं है!

"क्यों?"

"किसे क्या कहना चाहिए, यह तुमने अभी तक नहीं सीखा! बाबूको क्या इस तरह कड़ु वचनोंसे कष्ट पहुँचाकर भगा देना चाहिए?"

उमाने कुपित होकर कहा—मैंने भगा दिया था? वह आप भाग गये!

"छि! उनसे ऐसी बात कहनी चाहिए?"

"क्यों न कहनी चाहिए? बाप वैसा बाप हो तो उसे कुछ न कहना चाहिए। लेकिन ऐसे बापको सब कुछ कहना चाहिए। जिसका बाप इस तरह मुँह छुपाकर भाग जाता है? जिसका बाप गाँजा-अफीम पीकर पड़ा रहता है? मैं सब कहूँगी और कहूँगी।

ज्ञानदाने खीझकर कहा—यहाँसे तू चली जा।

ललना—मैं क्यों चली जाऊँ—तू चली जा। तू मेरे ऊपर हुक्म चलाने न आया कर।

हार मानकर ललना चुपचाप वह जगह छोड़कर चली गई।

११

उसी दिन दोपहर पीछेसे सुखदाने राजमणिके सामने एक काँसेका बर्तन रखकर कहा—नन्दकी देर बड़ी हुई, जान पड़ता है, आज वह न आयेंगे। देखा न, यह थोड़ा गिरवी रखकर अगर कुछ मिल सके।

राजमणि सुखदाके मुँहकी ओर ताककर सलमेके बाद बोली—बड़ी लज्जा मालूम पड़ती है बहू।

ललना वहीं खड़ी थी। उसने लोटा उठा लिया। बोली—मा, मैं जरा एक बार जाकर देख आऊँ।

सुखदाने रुँधे हुए कण्ठसे कहा—कहाँ?

ललनाने जरा हँसकर, एक बार सुखदाके मुखकी ओर देखकर कहा—वहीं, चौरसी दुकानमें।

"तू जायगी बेटी?"

"क्यों, उसमें लज्जा क्या है? मैं इस मुहल्लेकी लड़की हूँ, लड़कपनसे सभीने मुझको देखा है—मुझे लज्जा काहेकी? अच्छे या बुरे दिन किसके नहीं आते मा?"

ललनाकी बातें देखकर राजमणिने उसके हाथसे लोटा खींच लिया। कहा—तो फिर मैं ही जाऊँगी।

उस दिन तीन बजेके बाद सबका भोजन हुआ। सबके तृप्त होकर चले जानेपर सुखदाने ललनाको एक ओर जाकर कहा—ललना, तू कुएँसे थोड़ा-सा चहिवने-का साग तोड़ ला न बेटी?

ललनाने विस्मित होकर कहा—इस समय उसका क्या होगा मा?

"मुझे चाहिए।"

"क्या जरूरत है मा?"

सुखदाने जरा हँसकर कहा—तू सुनकर क्या करेगी?

यहीं क्या खाया जा सकता है ! छि छि छिः—घर ले जाऊँ ? लेकिन थोड़े-से चावल किसे-किसे खिलाऊँगा ? कोई जरूरत नहीं।

हारानचन्द्रने पोटली फिर सँभालकर बाँध ली, फिर उसी दूकानपर आकर खड़े हुए।

दूकानदारको आवाज देकर बोले—चावल ले लो।

“चार पैसेमें लेगा न ?”

“हाँ।”

“तो इस तखरीमें डाल दे।”

हारानचन्द्रने एक पात्रमें चावल डालकर पैसोंके लिए हाथ फैलाया। दूकानदारने चार पैसे देकर कुछ दूर जाकर हारानचन्द्रको एक बार मन-भर देख लिया। जानेको ठाव ! हरामखोरने जैसा किया वैसा फल पाया। आधेके लगभग चावल फेंक डाले। उसका पता ही नहीं चला। दूकानदारने उसकी इस चालाकीको पकड़नेकी चेष्टा ही नहीं की, यह बात एक बार भी हारानचन्द्रके मनमें नहीं आई। वह हँसते-हँसते सम्भवतः अन्यमनस्कभावसे अफीमकी कोठी (घर) खोजकर उसमें घुस गए।

अब इनका पीछा करनेकी जरूरत नहीं है। आइए, अन्यत्र चलें।

१२

“अब तो सहा नहीं जाता बेटी !”

तीन दिन उपवास करके कन्या ललनाके गलेमें हाथ डालकर शुभदा रोते हुए आवेगसे ऊपरके कमरेमें आकर गिर पड़ी।

यत्नसे माताके आँसू पोंछकर ललनाने कहा—मा, इस तरह धीरज क्यों खोती हो, ये दिन कुछ हमेशा नहीं रहेंगे—फिर सुदिन होगा।

शुभदाने राम-राम कहा—भगवान् करें ऐसा ही हो; लेकिन अब तो सहा नहीं जाता। मा होकर आँखोंके सामने तुम लोगोंकी यह दुर्दशा—पर अब अब तो नहीं देखा जाता बेटी। मैं गंगा मैयाकी गोदमें चली जाऊँगी, तू बेटी, जिस तरह हो सके, इन लोगोंको देखना। दरवाजे-दरवाजे भीख माँगना—पर—मा होकर मुझसे अब यह सहा नहीं जाता।

शुभदा जिस तरह छटपटाकर रो उठी, जिस तरह कन्याके गलेसे लिपट गई, उसे देखकर पत्थर पिघल जाय। आज बहुत दिनोंके बाद वह अपनेको सँभाल न पा रही है, बहुत सहनेके बाद आज अपना धीरज खो बैठी है—इसीसे आज वह अपने ऊपर काबू नहीं पा रही है। जो कभी क्रोध नहीं करता, उसका क्रोध बड़ा बेढब होता है, जो बड़ा शान्त है, उसमें जब आँधी आती है, तब वह भयंकर प्रलयंकर ही बन जाता है। इसीसे ललना बड़ी विपत्तिमें पड़ गई। वह किसी तरह माको यह समझा नहीं पाती कि ऐसा करनेसे वह जीती न रह सकेगी, अन्यथा अगर छूटकर बाहर निकल पड़ा तो वह उसे पकड़ न पावेगी।

बहुत रात गये मा-बेटी दोनों उसी जगह लेटे-लेटे सो गईं।

शुभदाको स्वामीके लिए बड़ा डर लग रहा है। आज छः दिनसे वह घर नहीं आये। उसके मनमें यह विचार आने लगा कि कहीं अपमान और लांछनाके भयसे उन्होंने आत्महत्या न कर ली हो। अपराध अर्थात् किसी कामका न होनेके लिए, अपनी कन्या होकर भी, ललनाने उस दिन जैसा अपमान किया था, जैसा तिरस्कार किया था, उससे आत्महत्या कर लेना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। यही खयाल आठों पहर उसके मनमें बना रहता है। आज भी घड़ी-दो घड़ी रात जब रह गई थी, शुभदा चौंककर उठ बैठी, ललनाको जगाकर बोली—अरी, वह नहीं हैं।

ललना नींदकी खुमारीमें अच्छी तरह समझ नहीं पाई। माताके मुँहकी ओर ताककर बोली—कौन नहीं है मा?

"मैं अभी सपना देख रही थी कि वह जीवित नहीं हैं।"

"क्यों इस तरह घबराती हो मा!"

बात पूरी होनेके साथ ही ललना भी रो पड़ी। जो कुछ थोड़ी-सी रात बाकी थी, उसे दोनोंने रोकर ही बिता दिया।

सूर्य निकले, धीरे धीरे दिन बढ़ने लगा। दस बज होंगे, इसी समय कृष्णा महरबिनने गंगामें स्नान करके अपने घर लौटते समय हारानके पास कुनबीके घरसे पुकारकर आँगनमें बुलाया—बहू।

शुभदाने बाहर आ कर कहा—क्या है मौसी! बैठो।

महरबिनने कहा—अब बैठूँगी नहीं बहू—देर हो रही है। नहाकर घर लौट रही थी—मनमें आया, ज़रा बहूको देखती चलूँ।

ज्ञानदा चुप रही।

कृष्णा महरबिनने स्वर कुछ धीमा करके कहा—बहू, ज़रा आकर सुन तो जा।

ज्ञानदाके पास आनेपर उन्होंने कहा—हारानकी कोई खबर मिली?

"ना।"

"आज कै दिनसे वह नहीं आया?"

"छः दिन हुए।"

"छः दिनसे नहीं आया? बाबुनपाड़ामें किसीको क्यों नहीं भेजा?"

"किसे भेजूँ? कौन जायगा?"

"यह भी ठीक है। तो मुझसे क्यों नहीं कहा?"

ज्ञानदाने कोई जवाब नहीं दिया।

कमलीकी कमरपरसे कुछ खिसक रही थी, उसे यथा-स्थान रखकर महर-बिनने कहा—हाथमें कुछ रुपया-पैसा है?

"कुछ नहीं।"

"तो घरका काम कैसे चलता है?"

ज्ञानदा चुप रही।

"लड़केकी तबीयत कैसी है?"

"वैसी ही है।"

"अपनी ललनाको ज़रा मेरे घर भेज देना।"

कृष्णा महरबिनके जानेपर ज्ञानदाने ललनाको बुलाकर कहा—कृष्णा महरबिन तुझे बुला गई हैं, एक बार हो आ।

"क्यों बुलाया है?"

"यह तो मालूम नहीं।"

सन्ध्या कृष्णप्रियाके घरकी ओर चल दी। कुछ देर बाद लौट आकर माताके हाथमें दो रुपये रखकर बोली—बुआने दिये हैं।

ज्ञानदा रुपये आँचलमें बाँधकर बोली—कुछ कहा नहीं?

"हाँ, कहा है कि बाबू जब आवें, तब उन्हें खबर दी जाय।"

ज्ञानदाने अपने ठाकुरजीको अनेक प्रणाम करके कृतज्ञता प्रकट की, पूजाकी कोठरीमें रखे हुए काली दक्षिणेश्वरीकी ओर बहुत देर तक हाथ जोड़े ताकती

रही, कुल्ही-कोनरेमें अनेक बार माथा टेका। इसके बाद खाने-पीनेका सामान मँगवा और आप गंगा-स्नान कर आई।

उस दिन ठीक समय पर मनके माफ़िक भोजन पाकर छलनामयी मनके आनन्दसे हँसते-हँसते अपनी गुड़ियाके ब्याहका सम्बन्ध करने दूसरे मोहल्लेकी लड़कीके घर चल दी।

रातको कुछ अँधेरा होने पर अँधेरेमें मुँह छिपाकर आज सारे दिनके बाद हारानचन्द्रने घरमें प्रवेश किया। छः दिन पहले वह जैसे थे, आज भी वैसे ही हैं, कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ। परिवर्तन हुआ है केवल धोतीमें। रंग धोबकेसे भी काला हो गया है और गिनकर देखा जाय तो धोतीमें सौसे अधिक स्थानोंपर गाँठ बँधी मिलेगी। हमेशाकी तरह समय पर उन्हें खिला-पिलाकर शुभदाने कन्या ललनाको बुलाकर कुछ हँसकर कहा—बेटी, भगवान् करें रोज़ ही उठकर पहले तेरा मुँह देखा करूँ—

ललना भी ज़रा हँसकर बोली—क्यों मा !

“ आज मैंने जो सुख पाया, वैसा सुख जन्म भर कभी नहीं पाया !”

दूसरे दिन सवेरे ललनाने कृष्णा बुआसे जाकर कहा—कल रातको बाबू आए हैं।

कृष्णा बुआका मुख खिल उठा। जैसे एक बड़ी दुश्चिन्ता मिट गई। मुस्काते हुए बोलीं—आ गया ? अच्छा है ?

“ हाँ।”

“ इतने दिन कहाँ था ?”

“ यह तो नहीं जानती।”

“ तूने पूछा नहीं ?”

“ ना।”

“ तेरी बुआने कुछ नहीं कहा ?”

“ नहीं। माँ तो बाबूसे बोलती ही नहीं है।”

“ बोलती नहीं ? क्यों ?”

“ मैं नहीं जानती। माँकी ही जाने।”

ग्यारह बजेके समय कृष्णप्रिया महराजिन बेलके पत्तेमें बाँधकर एक पत्थरका

पात्र हाथमें लिये, शुभदाके पास आई। बोली—थोड़ी-सी तरकारी लाई हूँ, हारानको देना।

शुभदाने वह तरकारीका पात्र हाथमें ले लिया और पासकी एक कोठरीकी ओर हाथका इशारा करके कहा—उस कोठरीमें हैं।

कृष्णप्रियाने शुभदाका मतलब समझ लिया। कहा—रहने दो, इस समय उसके पास न जाऊँगी—घरमें सब चीज खुली पड़ी है।

कृष्णप्रिया चली जा रही थीं, किन्तु आधे आँगन तक जाकर लौट पड़ीं। पास आकर शुभदासे कहा—बहू, हारानसे एक बात तू पूछ सकेगी?

"क्या?"

"इतने दिन वह कहाँ था?"

शुभदाने सिर हिलाकर कहा—अच्छा।

शुभदा पतिको जब भोजन कराने बैठी, तब धीरे धीरे उसने पूछा—इतने दिन कहाँ थे?

हारानचन्द्रने मलिन मुखसे सिर नीचा करके कहा—पेड़के तले।

शुभदा और कोई बात पूछ न सकी।

दूसरे दिन दोपहरके समय कृष्णा मौसी फिर आईं। बहुत-सी इधर उधरकी बातें करनेके बाद बोलीं—बहू, वह बात पूछी थी?

"हाँ।"

"उसने क्या कहा?"

"बोले कि पेड़के तले था।"

इसके बाद और और बातें होने लगीं। उठते समय कृष्णा बुआने अपने पालमें से दो धोतियाँ निकालकर कहा—घरमें पड़ी थीं इसीसे ले आई। हारानको पहननेके लिए देना।

शुभदाने हाथ फैलाकर धोतियाँ ले लीं।

कृष्णा बुआ कुछ देर उसके मुँहकी ओर ताकती रहीं। फिर तनिक धीमे स्वरमें बोलीं—देख बहू, हारान अगर पूछे कि किसने दी हैं तो और किसीका नाम ले देना, मेरा नाम न बताना।

शुभदाने तनिक हँसकर कहा—यह क्यों?

कृष्णाने इधर-उधर करके कहा—कुछ नहीं, यों ही।

"और अगर तुम्हारा नाम बता दूँ?"

अबकी कृष्णा बुआने भी हँसकर कहा—तो तुझे तेरी कृष्णा बुआकी सौगन्ध रही।

× × ×

फिर एक दिन दो दिन करके दिन कटने लगे। हारानचन्द्र जबसे घरमें आये तबसे घरके बाहर नहीं निकले। शुभदाका इस ओरसे डर कुछ दूर हो गया है, कुछ दुश्चिन्ता दूर हुई है किन्तु घरका काम कैसे चले? दुश्चिन्ताकी जड़ नहीं गई। किसीने किसी दिन एक रुपया दान कर दिया, किसीने किसी दिन दो रुपये भीख दे दिये, इस तरह क्या इतने बड़े परिवारका पालन-पोषण हो सकता है? चिन्ताकी बात क्या केवल यही है? माधवका मुँह देखनेसे तो देहका आधा खून पानी हो जाता है। उसपर ललनाके ब्याहकी चिन्ता है। वह दिन-दिन बड़ी होती जा रही है। ब्याहकी उम्र हो गई है। यहाँतक कि दो-तीन महीनेके भीतर उसके ब्याहका समय (समाजने कन्याके ब्याहकी जो अवधि ठहरा दी है) निकल भी सकता है। इधर जब शुभदाकी दृष्टि जाती है, तब वह इसका कोई उपाय देख नहीं पाती। माधवको बहलाया जा सकता है किन्तु भट्टाचार्यके घरमें ललनाकी उम्रकी लड़कीका ब्याह न हो तो प्राण नहीं बच सकेंगे; समाज इस अपराधको क्षमा नहीं कर सकता। माधवका मुँह देखनेसे खून पानी हो जाता है; किन्तु ललनाका मुँह देखनेसे शरीरकी हड्डी-पसली तक पानी बन जाने लगती है। दुश्चिन्ताके मारे शुभदा दिन-दिन दुबली होती जाती है, इस बातको और कोई भले ही न देख पावे, किन्तु ललना अच्छी तरह देख रही थी। रसोई बनाते समय [illegible] शुभदाका हाथ रुक जाता है। ललनाको यह मालूम पड़ जाता है। गाँवमें शुभदाके बराबर महीन सुपारी कोई नहीं काट सकती थी। वही शुभदा आजकल सुपारी काटती है तो कुछ महीन और कुछ मोटी हो जाती है। ललना यह समझ पाती थी। उसकी भूख कम हो गई है। दोनों वक्तकी जगह आजकल चार बड़े कौर एक बार खाना रह गया है। ललना अगर कुछ खानेके लिए बहुत कहती-सुनती है तो शुभदा कह देती है कि उसे बिलकुल ही भूख नहीं है। ललना यह सब देखती और छिपाकर अपने आँसू पोंछती। कभी कभी

कोठरीके किवाड़े बन्द करके अपना सिर फोड़ने लगती थी। इससे कुछ फल होने-वाला होता तो हो सकता था; किन्तु जगत्‌में ऐसा नहीं होता।

१३

आज एकादशी है। ललनाने रसोईघरमें जाकर देखा, उसकी मा भोजन बना रही है। चूल्हेके भीतर देखा, कोई चीज पक रही है।

उस चीजको पहचान न पानेके कारण ललनाने पूछा—यह क्या है मा! क्या भून रही हो?

"कुछ कचुओंके फल (बालें) हैं।"

"इनका क्या होगा?"

"छलना खायेगी। आज मरघट जानेके समय खेतसे तोड़ लाई थी। मुझसे भून देनेके लिए कहा था, लेकिन घरमें तेल तो है नहीं, इसीसे केलेके पत्तेमें लपेटकर यों ही भून दे रही हूँ।"

ललनाने फिर कुछ नहीं पूछा।

भोजनके समय छलनाने साथ खाया था यद्यपि चूल्हेमें भूनकर बनाया था, उसकी सूरत और स्वाद देखकर वह बहुत ही क्रुद्ध होकर बोली—मा ही शायद तुमने भूना है! यह तो बिलकुल राख बन गये हैं!

शुभदाने इधर उधर करके डरते-डरते कहा—तनिक जल गया है बेटी।

छलनाने और भी बिगड़कर कहा—मैं ऐसे खेतसे चुन लाई। तुम्हें शायद कच्ची हुई चीज अच्छी लगती है, इसीसे अपने मनके माफिक भून कर राख कर दिया है! छी, यह क्या है, तुम्हीं खाना।

मुँह भारी हाँड़ीकी तरह बनाकर छलनाने हाथका कौर थालीमें डाल दिया।

छलनाने जो कुछ कहा वह अपने मनके माफिक कहा या नहीं यह तो हम नहीं कह सकते; किन्तु यह अवश्य है कि अपने मनके माफिक कोई चीज न होने पर वह स्पष्ट बात उसकी तरह कोई नहीं कह सकता।

बहुत भुन-भुन करके—बक-झककर छलना जब खाना खाकर चली गई, तब ललनाने कहा—मा, छलना दिन-दिन बिगड़ती जा रही है, अब तुम कुछ कहती

या औरोंकी क्यों नहीं हो ! मुझे तो उसे कुछ अफसोस जाहिर नहीं होता। एक कहूँगी तो दस सुना देगी।

सुनन्दाने हँसकर छोड़कर कहा—सब लड़कियाँ क्या तुम जैसी होती हैं बेटी ! हाथकी पाँच उँगलियाँ पाँच तरह की हैं। मैं उसे सिखा लिखा नहीं पाती, पढ़ना नहीं पाती। अगर वह नाराज होकर दो बातें सुना दे तो सह लेना ही उचित है।

"मगर यह क्या अच्छा है ?"

"अच्छा नहीं, यह मैं जानती हूँ, किन्तु क्या करूँ ? मेरे दिन अच्छे होते तो ललना भी न कहती और मुझे भी न सुनना पड़ता।"

ललनाने भी समझा कि माताका कहना बिलकुल झूठ नहीं है।

दूसरे दिन प्रातः इसी समय ललना अत्यन्त विरक्त मुख लिये माताके पास आकर खड़ी हो गई।

सुनन्दाने उसकी ओर देखकर कहा—क्या हुआ ?

ललनाने एक रुपया निकालकर देकर कहा—कृष्णा कुम्हार कहता है कि अब काटने पर भी और रक्त नहीं है और कूटने पर भी और मांस नहीं है। अपने आपसे कुछ उपाय करनेको—कुछ कमानेको कहो; नहीं तो मैं दुःखी-गरीब और रुपया-पैसा कुछ न दे सकूँगी।

उस दिनका सब काम-काज हो चुकने पर ललना अपने भाई माधवके पास आकर बैठी।

माधवने पूछा—दीदी, उसका क्या हुआ ?

"किसका माधू ?"

माधवने कुछ समझकर कहा—कहीं जानेका।

ललनाने भी कुछ रुककर—जरा सोचकर कहा—यही बात आज तुमसे कहूँगी माधू।

माधव आग्रहके साथ एकदम उठ बैठा। बोला— कहो, बताओ दीदी ! कब जाना होगा ?

"मैं कल जाऊँगी।"

"कल जाओगी ! और मैं ?"

"मैं पहले जा बैठूँ, उसके बाद तुम आना।"

माधवने व्यग्रताके साथ कहा—क्यों, एक साथ ही क्यों न चलें।

"नहीं। तब मा बहुत रोवेंगी।"

माधव कुछ खिन्न होकर बोला—रोने दो।

"छि:, कहीं यह हो सकता है? पहले मैं जाऊँगी।"

"तो फिर कब आओगी?"

"जिस दिन तुम जाओगे, उसी दिन और एक बार आऊँगी।"

"बीचमें नहीं आओगी?"

"ना।"

"मैं कब जाऊँगा?"

"जिस दिन मैं लेने आऊँ।"

"तुम आओगी?"

"हाँ।"

"तुम्हारे जाने पर मा रोवेंगी?"

"जान तो पड़ता है।"

माधवने कुछ देर निरुत्तर रहकर कहा—दीदी, तो फिर जानेकी जरूरत नहीं।

"क्यों भाई?"

"माके रोनेका खयाल आनेपर मेरी वहाँ जानेकी इच्छा नहीं होती।"

"तो तू नहीं जायगा?"

माधवने फिर कुछ देर तक चुप रहकर कहा—हाँ, जाऊँगा।

"तो मैं कब जाऊँ?"

"जाओ।"

"मुझे यहाँ न पाकर रोवेगा तो नहीं?"

"मुझे लेने तुम कब आओगी?"

"और कुछ दिन बाद।"

"तो जाओ, मैं न रोऊँगा।"

माधव देख न पावे, इस तरह सुमनाने अपने दो-एक बूँद बहते हुए आँसू पोंछ डाले। फिर स्नेहपूर्वक उसके सिरपर हाथ रखकर कहा—मेरे चले जानेपर ये सब बातें मासे न कहना।

"अच्छा, नहीं कहूँगा।"

"मा जब जो कहें, उसे सुनना किसी तरह उनके मनको कष्ट न होने पावे। ठीक समय पर दवा खा लेना।"

"खा लूँगा।"

कुछ देर ठहरकर ललनाने फिर कहा—माधू, सदा दादाकी तुमको याद है?

"है।"

"वह अगर आवें—अगर तुम्हें देखने आवें—तो कहना कि दीदी चली गई। लेकिन जब कोई न हो, तब कहना।"

"अच्छा।"

इसी समय शुभदाने आकर कहा—बड़ी रात हुई, तू सोने जा बेटी।

माधवने इस बातके उत्तरमें कहा—मा, दीदी आज मेरे पास सोवेगी।

उस समय दीदीको छोड़नेको माधव किसी तरह भी न चाहता था। शुभदा जान पड़ता है, यह समझ गई। उसने ललनासे कहा—अच्छा तुम यहीं सो रहो—मैं ऊपर छलनाके पास जाकर सोऊँगी।

शुभदाके चले जाने पर भी भाई-बहनकी बातचीत बहुत देर तक चलती रही। इसके बाद माधव सो गया।

दूसरे दिन सबेरे ललनाको किसीने देख न पाया। सबेरे यही उठकर घरके सब काम करती थी—आज वे सब काम अब तक यों ही पड़े थे—कोई काम नहीं हुआ था। आठ-नौ बजनेका समय हुआ देखकर शुभदाने माधवसे पूछा—तेरी दीदी कहाँ है?

छलनाने भी पूछा—दीदी कहाँ गई?"

माधवने कहा—हम नहीं जानते।

बेला अधिक होते देखकर शुभदा सब काम आप ही करने लगी। उस दिन छलनाने भी उसमें माताकी सहायता की। भोजन तैयार हुआ, सबने खाया-पिया। दोपहर भी बीत गई, तब भी वह नहीं आई।

सबलोग उसे ढूँढ़ने लगे। हारानचन्द्र भी भोजन करके [illegible] घूमने निकले। जहाँ कहीं ललना जाती थी उन सब जगह देख आये। सन्ध्याके पहले हारानचन्द्रने लौट आकर कहा कि कहीं वह नहीं देख पड़ी—घर आ गई क्या?

"नहीं आई।"

माधवने व्यस्तताके साथ कहा—क्यों, एक
" नहीं। तब मा बहुत रोवेंगी।"
माधव कुछ खिन्न होकर बोला—रोने
" छिः, कहीं यह हो सकता है! पहले
" तो फिर कब आओगी?"
" जिस दिन तुम आओगे, उसी दिन
" बीचमें नहीं आओगी?"
" ना।"
" मैं कब आऊँगा?"
" जिस दिन मैं लेने आऊँ।"
" तुम आओगी?"
" हाँ।"
" तुम्हारे जाने पर मा रोवेंगी?'
" जान तो पड़ता है।"
माधवने कुछ देर निरुत्तर रहकर कहा—
" क्यों भाई?"
" माके रोनेका स्वभाव आनेपर नहीं
" तो तू नहीं जायगा?"
माधवने फिर कुछ सोचकर कुछ चुप रहा
" तो मैं चली जाऊँ?"
" जाओ।"
" मुझे देख न पाने पर रोवेगा तो न
" मुझे लेने तुम कब आओगी?"
" और कुछ दिन बाद।'
" तो जाओ, मैं न रोऊँगा।"
माधव देख न पाने, इस तरह क—
पोंछ डाले। फिर स्नेहपूर्वक उसके सि
ये सब बातें मासे न कहना।
" अच्छा, नहीं कहूँगा।"

साथमें चार-छह नौकर और कई गवैये-बजैये चले। उनमें एक गानेवाली भी थी। माँझियोंने पाल चढ़ाकर बदरगंज* नाम लेकर रूपनारायण नद (बड़ी नदी) में बजरा खोल दिया।

अनुकूल वायु पा कर पालके जोरसे बह चला बजरा राजहंसीकी तरह बराबर तैरता हुआ चलने लगा। नदके किनारे स्थान-स्थानपर लंगर डाला जाने लगा। जगह-जगह सुरेन्द्रबाबू दल-बल सहित उतरकर सैर करने लगे। इसी तरह बंग और मल्लके अनेक स्थानोंमें घूमा-फिरा गया। इसमें अनेक दिन बीत गये। इसके बाद बजरा कलकत्तेमें आकर लगा। और सबकी इच्छा थी कि इस जगह अधिक दिन ठहरा जाय लेकिन सुरेन्द्रबाबू सहमत नहीं हुए। उन्होंने कहा— कलकत्तेकी हवा और स्थानोंकी अपेक्षा दूषित है। यहाँ नहीं ठहरूँगा।

बजरा उत्तरकी ओर मुँह करके चल दिया। बजरा जब कलकत्ता छोड़कर चला, तब बाबूके इष्ट-मित्र, बन्धु-बान्धव, जो उनके साथ थे, अपने मनमें सोचने लगे कि बहुत दिन बजरेमें रहा गया, जल-कणोंसे मिली हुई स्निग्ध शीतल वायुका सेवन करके खूब आराम कर चुके, शरीरके स्वास्थ्यकी भी उन्नति हो गई अब घर लौटकर स्त्री-पुत्रोंका मुँह देख पावें तो शायद शरीरकी कान्ति थोड़ी और बढ़ जाय। इस तरह क्रमशः उनमेंसे अधिकांश लोगोंके मनमें अधिक दूर जानेकी इच्छा नहीं रही। दो-एक दिनके बाद दो-एक आदमी मुँह खोलकर कह भी बैठे कि देशको छोड़े अधिक दिन हुए—आपका शरीर भी सम्पूर्ण आरोग्य हो गया है, अब लौट चलनेमें हानि क्या है।

सुरेन्द्रबाबूने जरा हँसकर कहा—हानि कुछ भी नहीं है। लेकिन अभी नहीं लौटूँगा। तुम लोगोंको अगर घरकी याद बहुत लगा रही हो तो तुम चले जाओ।

साधारण घरके लिए, पुत्र स्त्री और बाल-बच्चोंके लिए मनका उदास होना स्वाभाविक लक्षण समझकर वे लोग चुप हो गये, जिन्होंने लौटनेकी बात चलाई थी। सुरेन्द्रबाबूने भी इस बारेमें फिर कुछ नहीं कहा।

बजरा फिर धक-धककर चलने लगा लेकिन उसके भीतर पहले-का-सा उत्साह नहीं रह गया। सुरेन्द्रबाबूके सिवा प्रायः सभी लोग उदास रहकर समय बिताने

* एक पीरका नाम जिसकी उपासना-पूजा बंगालके मुसलमान माँझी करते हैं। अरबीमें बदरका अर्थ पूर्णिमा भी होता है।—अनुवादक।

दूसरा खंड

१

नारायणपुरके जमींदार सुरेन्द्रनाथ चौधरीके मनमें एक दिन यह खयाल आया कि उनका स्वास्थ्य गिर गया है; वायु-परिवर्तन न करनेसे कठिन रोग उत्पन्न हो सकता है। सुरेन्द्रबाबूकी आमदनी बहुत काफी है। अवस्था कुछ अधिक नहीं है; शायद पचीस सालसे अधिक न होगी। इसी अवस्थामें उन्हें तरह तरहके शौक हो गये हैं—मुसाहबों और इष्ट मित्रोंकी भी कमी नहीं है। उनमेंसे दो-चार जनोंको बुलाकर कहा—मेरी तन्दुरुस्ती बहुत खराब हो गई है, तुम लोगोंकी क्या राय है?

तब सभीने मुक्तकंठसे स्वीकार किया कि इस बारेमें उन्हें कुछ भी सन्देह नहीं है। वे बहुत दिनोंसे यह बात समझ गये थे किन्तु इसपर कभी सुरेन्द्र बाबूका खयाल न था, इसीसे उन्हें कहनेका साहस नहीं हुआ।

सुरेन्द्रबाबूने कहा—जान पड़ता है, अच्छी हवा खाने-पीनेकी वस्तु न होगी। मुझे विश्वास है कि हवा बदलनेसे ही सब ठीक हो जायगा।

इसमें भी किसीको सन्देह नहीं था। सबने यही मत प्रकट किया कि वायु-परिवर्तनके बराबर औषध और नहीं है।

सुरेन्द्रबाबूने कहा—तुम लोग बता सकते हो कि किस स्थानका जलवायु सबसे उत्तम है?

तब अलग लोगोंने अनेक स्थानोंके नाम लिये।

सुरेन्द्रबाबूने कुछ देर सोचकर कहा—मैं कहता हूँ, कुछ दिन नदीके ऊपर नावमें ही क्यों न रहा जाय?

सबने एक स्वरसे कहा—यह तो सबसे अच्छा है।

तब चल-चलाचलकी धूम पड़ गई। एक बहुत बड़ा बजरा तरह तरहसे सजाया जाने लगा। दो-तीन महीनेके लिए सब जरूरतकी चीजें उसमें रखी गईं। इसके बाद पंचांगसे अच्छी घड़ी-मुहूर्त देखकर सुरेन्द्रबाबू नावपर सवार हुए।

साथमें नौकर-चाकर और कई गवैये-बजैये चले। उनमें एक गानेवाली भी थी। माँझियोंने पाल चढ़ाकर बदर-बदर* नाम लेकर रूपनारायण नद (बड़ी नदी) में बजरा खोल दिया।

अनुकूल वायु पा कर पालके जोरसे वह बड़ा बजरा राजहंसीकी तरह जलपर तैरता हुआ चलने लगा। नदके किनारे स्थान-स्थानपर लंगर डाला जाने लगा। जगह-जगह सुरेन्द्रबाबू दल-बल सहित उतरकर सैर करने लगे। इसी तरह जल और थलके अनेक स्थानोंमें घूमा-फिरा गया। इसमें अनेक दिन बीत गये। इसके बाद बजरा कलकत्तेमें आकर लगा। और सबकी इच्छा थी कि यहाँ कुछ अधिक दिन ठहरा जाय लेकिन सुरेन्द्रबाबू सहमत नहीं हुए। उन्होंने कहा—कलकत्तेकी हवा और स्थानोंकी अपेक्षा दूषित है। यहाँ नहीं ठहरूँगा।

बजरा उत्तरकी ओर मुँह करके चल दिया। बजरा जब कलकत्ता छोड़कर चला, तब बाबूके इष्ट-मित्र, बन्धु-बान्धव, जो उनके साथ थे, अपने मनमें सोचने लगे कि बहुत दिन बजरेमें रहा गया, जल-वायुसे मिली हुई स्निग्ध शीतल वायुका सेवन करके बहुत आराम कर चुके, शरीरके स्वास्थ्यकी भी उन्नति हो गई, अब घर लौटकर स्त्री-पुत्रोंका मुँह देख पावें तो शायद शरीरकी कान्ति थोड़ी और बढ़ जाय। इस तरह क्रमशः उनमेंसे अधिकांश लोगोंके मनमें अधिक दूर जानेकी इच्छा नहीं रही। दो-एक दिनके बाद दो-एक आदमी मुँह खोलकर कह भी बैठे कि देशको छोड़े अधिक दिन हुए—आपका शरीर भी सम्पूर्ण आरोग्य हो गया है, अब लौट चलनेमें हानि क्या है।

सुरेन्द्रबाबूने जरा हँसकर कहा—हानि कुछ भी नहीं है। लेकिन अभी नहीं लौटूँगा। तुम लोगोंको अगर घरकी याद बहुत आ रही हो तो तुम चले जाओ।

साधारण घरके लिए, पुत्र स्त्री और बाल-बच्चोंके लिए मनका खराब होना स्वाभाविक समझकर वे बड़े खुश हो गये, जिन्होंने लौटनेकी बात चलाई थी। सुरेन्द्रबाबूने भी इस बारेमें फिर कुछ नहीं कहा।

बजरा फिर धीरे-धीरे चलने लगा लेकिन उनके भीतर पहले-जैसा उत्साह नहीं रह गया। सुरेन्द्रबाबूके सिवा प्रायः सभी लोग उदास रहकर समय बिताने

---

* एक पीरका नाम, जिनकी उपासना-पूजा बंगालके मुसल्मान माझी करते हैं। इससे यात्रा सर्व शुभमय भी होता है।—अनुवादक।

लगे। तब जो दो दिन पहले पागलपन समझकर, पाप मानकर भी उसे दबा गए थे, वे पौरुषके गर्वको छोड़कर फिर वही बात उठानेका मौका खोजने लगे।

प्रवासमें रहकर घर जानेकी बात मनमें उठने पर—लोग-बच्चोंका मुँह याद करके उनके पास लौट जानेकी इच्छा एक बार होनेपर फिर उसे किसी तरह दबाकर रखा नहीं जा सकता। एक एक दिन एक एक वर्षके समान बीतता है। उन लोगोंका भी यही हाल हुआ। फिर तो तीन-चार दिनके भीतर ही प्रायः सभी सब शिष्टाचार और लज्जाको तिलांजलि देकर घर जानेकी इच्छा प्रकट करने लगे।

सुरेन्द्रबाबूने कोई आपत्ति नहीं की। और बजराके बन्दन-नगरको नौबत न माँगते ही प्रायः सभी चल दिये। केवल नौकर-चाकर रह गये। बजरा प्रायः सूना हो गया। बाहरके लोगोंमें केवल पखौजका रामेश्वर गवैया और सुरेन्द्र बाबूका अनुग्रह जिस पर था, वह नर्तकी रह गई। बाबू अब उन्हींको लेकर आगे चले। देशको लौटनेका एक बार भी इरादा नहीं किया।

एक दिन तीसरे पहरके बाद, सूर्य अस्त होनेके पहले ही, पश्चिमकी ओर बादल घिरने लगे। सुरेन्द्रबाबूने माँझीको बुलाकर कहा - देखते हो हरिचरन, बादल घिरते आ रहे हैं?

"जी हाँ।"

"शायद आँधी भी आयेगी—तुम्हें क्या जान पड़ता है?"

"बैसाख-जेठके महीनेमें आँधी आना कोई अचरज नहीं है बाबूजी।"

"तो बजरा एक जगह लगाकर बाँध दो।"

"लेकिन यहाँ कोई ठौर तो नहीं देख पड़ता। क्या कछारमें बजरा लगाऊँ?"

"अच्छीतरह नहीं तो क्या डूबकर जान देना है?"

माँझीने रंग देखकर कहा—मेरे रहते यह डर नहीं है बाबूजी। आँधी आनेके पहले ही किनारे लगा दूँगा।

सुरेन्द्रबाबूने खीझकर कहा—इतना साहस करनेकी जरूरत नहीं है—तुम बजरा लगा दो।

लाचार होकर हरिचरनने किनारे पर एक साफ-सुथरी जगह देखकर बजरा लगाकर बाँध दिया।

सुरेन्द्र बाबू बजरेकी छतपर आकर बैठे। नौकर तमाखू भरकर रख गया। बाबू गुड़गुड़ीकी नली मुँहसे लगाकर एक नौकरको बुलाकर बोले—जाय उस्तादजीको बुला दे।

कुछ देर बाद एक पछाँहके रहनेवाले उस्तादजी सिरपर हाथभर ऊँचा साफा बाँधे, दाढ़ीके दो हिस्से करके उनके दोनों छोर दोनों कानोंमें लपेटे मूँछोंपर ताव देते हुए आकर बोले—क्या हुक्म है हुजूर?

सुरेन्द्र बाबू उस पार किनारेके पास ही जलमें कुछ काली-काली-सी चीज उतराती हुई देख रहे थे। वह एक मनुष्यका सिर-सा जान पड़ रहा था। उसीको वह मन लगाकर ध्यानसे देख रहे थे। पहले उस्तादजीके शब्द उनके कानोंमें ही नहीं गये। उस्तादजी उत्तर न पाकर फिर बोले—हुजूर!

सुरेन्द्र बाबूने घूमकर देखा। उस्तादजीको देखकर बोले—उस्तादजी, जान पड़ता है, मौसी नहीं आवेगी। अब गाना-बजाना हो।

उसने सिर हिलाकर कहा—जो हुक्म।

सुरेन्द्र बाबू फिर वही चीज देखने लगे।

थोड़ी देर बाद ही एक युवती आकर बाबूके पास गलीचे पर बैठ गई। उस्तादजी बायाँ तबला हाथमें लिए ऊपर चढ़ रहे थे। देखकर सुरेन्द्रनाथने कहा—उस्तादजी, तुम नीचे जाओ। आज बाजेकी जरूरत नहीं, खाली गाना होगा।

उस्तादजी जरा रूखी हँसी हँसकर नीचे उतर गये।

इसके पहले जो स्त्री गलीचेके ऊपर आकर बैठी थी, उसका नाम जयावती है। अवस्था जान पड़ता है, बीस बरसकी होगी। खूब हृष्ट-पुष्ट सुडौल देह है। रूप-रेखा, चेहरा-मोहरा भी देखनेमें बुरा नहीं है। बहुत दिनोंसे सुरेन्द्रनाथकी कृपापात्र है, उन्हींकी आश्रित है। कलकत्तेके घरकी लड़की है। साज-सिंगारका आडम्बर कुछ बहुत अधिक न था। एक पतली काली किनारीकी साड़ी और दो-एक गहने पहने फिर शान्त पक्षीकी तरह स्थिर होकर बैठी थी। सुरेन्द्र बाबू उसकी ओर देखकर जरा हँसकर बोले—क्या, आज तुमको दिनभर नहीं देखा?

"सिर-दर्दके कारण दिनभर लेटी रही।"

"अब क्या अच्छा हो गया है?"

जयावतीने जरा मुस्कराकर कहा—थोड़ा कम हो गया है।

"गाना गा सकोगी?"

जयावती फिर हँसी। बोली—हुक्म कीजिए।

"हुक्म क्या करूँ, जो जी चाहे गाओ।"

जयावतीने गाना शुरू किया।

सुरेन्द्र बाबू उस पार जलमें उतरा रही उस काली-काली चीजके ऊपर नजर रखकर अन्यमनस्क भावसे गाना सुनने लगे। सुनते-सुनते कुछ देर बाद, जयावतीका गाना समाप्त होनेके पहले ही, वह कह उठे—जया, वह चीज हिलती-डुलती इधर उधर हो रही है—क्यों न?

जयावती गाना छोड़कर उधर विशेष रूपसे देखकर बोली—जान तो पड़ता है।

"मेरी दूरबीन कहाँ है? (नौकरको पुकारकर) अरे भीतरसे मेरा दूरबीनका बक्स ले के आ जाओ।"

दूरबीन आई। बक्स खोलकर दूरबीन निकालकर सुरेन्द्र बाबू बहुत देरतक उस चीजको देखते रहे। फिर दूरबीनको बक्समें बन्द करके उठ खड़े हुए।

जयावतीने पूछा—क्या चीज है?

"कोई आदमी जान पड़ता है।"

"इतनी देरसे पानीके भीतर क्या कर रहा है?"

"यह तो नहीं जानता। देखना चाहिए जरा।"

"कोई आदमी भेज दीजिए।"

"मैं आप ही जाऊँगा।"

आज्ञा पाते ही एक माँझी थोड़ी देरमें बगानमें बँधा हुआ एक बोट (डोंगी) ले आया।

सुरेन्द्रने कहा—उस पार ले चलो।

बोट जब पास पहुँचा तब सुरेन्द्र बाबूने देखा, एक स्त्री गलेतक पानीमें डूबी खड़ी है। उसका मुख चन्द्रमाके खिले हुए फूलकी तरह सुन्दर है। काले केश पारसकी तरह पीठके ऊपर फैले हुए हैं। सुरेन्द्र बाबू और पास गए, तो भी वह स्त्री बोटकी तरफ नहीं मुड़ी, उधर बढ़नेकी या बोटपर चढ़नेकी इच्छा भी नहीं प्रकट की। जैसी स्थिर होकर खड़ी थी, वैसी ही पहलेकी तरह खड़ी रही।

सुरेन्द्र बाबूने कुछ इधर-उधर करके कहा—पास कोई गाँव है क्या?

"मैं कह नहीं सकती। जान पड़ता है, नहीं है।"

"तो तुम यहाँ कहाँसे आई?"

स्त्री कुछ बोली नहीं।

"तुम्हारा घर क्या कहीं पास ही है?"

"जी नहीं। बहुत दूर है।"

"तब यहाँ कैसे आई?"

"हम लोगोंकी नाव डूब गई।"

"कब डूबी?"

"कल सबेरे।"

"तुम्हारे साथके और लोग कहाँ हैं?"

"मुझे नहीं मालूम।"

"तुम इतनी देरसे यहाँ खड़ी क्यों हो? आसपास किसी गाँवका पता क्यों नहीं लगाया?"

स्त्री फिर चुप हो रही।

अपनी बातका उत्तर न पाकर सुरेन्द्र बाबूने कहा—तुम्हारा घर यहाँसे कितनी दूर होगा?

"दस कोसके लगभग।"

"किस तरफ?"

सुरेन्द्र बाबूका बजरा जिधर जा रहा था, उसी ओर उँगलीसे दिखाकर स्त्रीने कहा—इस तरफ।

सुरेन्द्रनाथने कुछ सोचकर कहा—मैं इधर ही जाऊँगा। मेरे बजरेमें जगह भी है। अगर तुमको किसी तरहकी आपत्ति न हो तो मेरे साथ चलो। मैं तुमको तुम्हारे घर पहुँचा दूँगा।

फिर भी वह स्त्री मौन ही रही।

सुरेन्द्र बाबू उसके मनका भाव कुछ समझ न पाकर बोले—चलोगी?

"चलूँगी।"

"तो फिर आओ।"

फिर कुछ देर चुप रहकर उस स्त्रीने कहा—यहीं पासही पानीमें एक मुर्दा पड़ा है।

अब सुरेन्द्रनाथकी समझमें आया कि वह स्त्री इतनी देरसे पानीके भीतर क्यों खड़ी हुई है, बाहर नहीं निकलती। वह खुद नीचे उतर पड़े। नौकरसे कहा कि वह डोंगी खेकर घरसे एक धोती ले आवे।

इसके बाद उस स्त्रीसे पूछा—धोती आने पर मेरे साथ चलोगी न?

स्त्रीने सिर हिलाकर कहा—चलूँगी।

नौकर धोती ले आया। थोड़ी देर बाद वे उस स्त्रीको लेकर घरमें लौट आये।

घरमें आकर सुरेन्द्र बाबूने उस अभ्यागत स्त्रीको कमलावतीके सुपुर्द कर दिया। कमला मीठी बातें करके, यत्न और आत्मीयता दिखाकर उस स्त्रीको स्नान कराने के लिए अपने कमरेमें ले गई।

भोजन कराकर, पान देकर, पास बैठकर, कमलावतीने अब स्त्रीसे कहा—बहन, तुम्हारा नाम क्या है?

स्त्रीने कहा—मेरा नाम मालती है। और तुम्हारा नाम?

"मेरा नाम कमलावती है। तुम्हारा घर कहाँ है?"

"महेशपुर गाँवमें।"

"यहाँसे कितनी दूर है?"

"लगभग दस-बारह कोस उत्तरमें।"

"तुम्हारी ससुराल कहाँ है बहन?"

मालतीने जरा हँसकर कहा—कहीं भी नहीं।

"यह क्या—क्या ब्याह नहीं हुआ?"

"हुआ था लेकिन वह सब खतम हो गया।"

कमलावतीने कुछ कुण्ठित भावसे कहा—कितने दिन हुए?

मालती—बहुत दिन हुए। मुझे ब्याहकी सब बातें अच्छी तरह याद भी नहीं हैं।

कमलावतीने इस प्रसंगको बदलनेके लिए और प्रश्न किया—तुम्हारे घरमें कौन कौन है?

"कोई नहीं है। एक बुआ थी। जान पड़ता है, वह भी नहीं रही।"

कमलावतीने समझा, शायद दुखनेवाला प्रसंग आ पड़ा है, अतएव इस बातको भी बदला। वरना उसने ठीक नहीं समझा। बोली—तुम कहाँ जा रही थी बहन?

मालतीने कुछ सोचकर कहा—गंगा-तीरको।

"जो लोग तुम्हारे साथ थे, उनका क्या हुआ?"

"मालूम नहीं।"

"अब घर जाओगी?"

"यही सोचती हूँ।"

जयावती कुछ हँसी। फिर एकाएक कह उठी—मेरे साथ चलोगी?

मालतीने कहा—ले चलोगी तो चलूँगी। तुम्हारे स्वामीने मेरा बड़ा उपकार किया है। और कहीं भी मेरा कोई नहीं है। घर जाकर किसके पास रहूँगी, यह भी नहीं जानती।

जयावतीने साथ चलनेकी बात कहकर ही अपनी गलतीपर जीभ काट ली थी। मालतीका उत्तर सुनकर वह चिंतित हो उठी। जयावतीको जान पड़ा कि मालतीको ले जाना उसके लिए कोई सुखकर काम न होगा। सुरेन्द्र बाबू मगर-

मालतीने कहा - तुम लोगोंका घर कहाँ है?

"नारायणपुरमें।"

"और या कहाँ रही थी?"

"यों ही घूमने-फिरने। स्वामीका स्वास्थ्य कुछ गड़बड़ हो गया था,—इसीसे हवा बदलने निकले थे।"

और भी दो-चार बातें हुईं। इसके बाद दोनों सो गईं।

२

रातको सुरेन्द्रनाथ अच्छी तरह सो नहीं सके, इसीसे दूसरे दिन बहुत तड़के पलँग छोड़कर उठ बैठे। हाथ-मुँह धोकर गुड़गुड़ीकी नली मुँहमें लगाये बजरेकी छतपर आ बैठे। हवाका जोर था। पाल चढ़ाकर माँझियों-मल्लाहोंने बजरा खोल दिया। कुछ दिन चढ़नेपर सुरेन्द्रनाथने जयावतीको बुला भेजा। उसके आनेपर पूछा—उस औरतका हाल कुछ मालूम हो सका?

"सब कुछ।"

"घर कहाँ है?"

"महेशपुरमें।"

"महेशपुर कहाँ है?"

"यह तो नहीं जानती। यहाँसे दस-बारह कोस उत्तरमें बताती है।"

"आपका नाम क्या है ?"

"मैंने पूछा नहीं।"

सुरेन्द्र बाबूने हँसकर कहा—तब तो देखता हूँ, सब कुछ तुम जान चुकी हो ! खैर, स्वामीका नाम क्या है ?

"स्वामी नहीं था।"

"ससुराल कहाँ है ?"

"मालूम नहीं।"

सुरेन्द्रबाबूने कुछ सोचकर कहा—जाति क्या है, जानती हो क्या ?

"ना।"

"नाम जानती हो।"

"जानती हूँ—नाम मालती है।"

"अच्छा मालतीको अगर कुछ आपत्ति न हो तो उसे एक बार मेरे कमरेमें बुला भेजो। मैं आप उससे सब बातें पूछूँगा।"

कुछ देर बाद एक नौकरने आकर कहा—कमरेमें चलिए।

सुरेन्द्र बाबू तनिक भी देर न करके फौरन अपने कमरेमें आकर उपस्थित हुए। नीचे फर्शके गलीचेपर, मालती सिर झुकाये बैठी थी। जगत्तारिणी भी पास खड़ी थी। किन्तु सुरेन्द्र बाबूके प्रवेश करते ही वह वहाँसे चल दी। वह सब यह जानती थी, शायद उसके सामने सब बातें न हो सकें, शायद कोई असुविधा हो—यह वह समझती थी, इसीसे सामनेसे हट गई; किन्तु आड़में खड़ी रही थी या नहीं, सब बातचीत सुननेकी इच्छा उसके मनमें थी या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता।

सुरेन्द्र बाबू एक आसनपर आकर बैठे। चुपचाप बड़ी देर तक मालतीके मुँहकी ओर ताकते रहे। मालतीका मुख बहुत मुरझाया हुआ था और उसपर विषादकी छाया थी। किन्तु फिर भी बहुत मनोहर जान पड़ता था। देहका रंग बड़ा सुन्दर था। अंगोंकी सुघड़ाई और सुडौलपना अत्यन्त प्रीतिदायक था। सुरेन्द्रको ध्यान पड़ा, एक स्त्रीमें एकत्र इतना रूप उन्होंने पहले कभी नहीं देखा। विधवा है—किन्तु कौन जाति है।

सुरेन्द्र बाबूने पूछा—तुम्हारे पिताका नाम क्या है ?

"हारानचन्द्र मुखोपाध्याय।"

"वह घरमें ही है ?"

मालतीने कुछ सोचकर कहा—ना। वह नहीं है।

सुरेन्द्र बाबूने समझा, उसके पिताकी मृत्यु हो गई है। बोले—घरमें और कौन है ?

अबकी मालती कुछ देर चुप रही। उसके बाद धीरे धीरे बोली—जान पड़ता है, अब कोई नहीं है।

"इतने दिन तुम कहाँ थीं ?"

"वहीं थी लेकिन हम गंगासागर जा रही थीं रास्तेमें नाव डूब गई।"

"तुम्हारी ससुराल कहाँ है ?"

"कालीपाड़ामें।"

"वहाँ तुम्हारा कौन है ?"

"शायद कोई है, लेकिन मैं उन लोगोंको नहीं पहचानती।"

"कभी वहाँ नहीं गईं ?"

"ब्याहके समय एक बार गई थी।"

सुरेन्द्र बाबूने कुछ सोचकर कहा—तुम्हारे मायकेमें भी कोई नहीं है, ससुरालमें भी कोई नहीं है—इसमें कम तुम्हें मालूम नहीं—सो अब कहाँ जाओगी ?

"कलकत्ता।"

"कलकत्ता ? वहाँ तुम्हारा कौन है ?"

"कोई नहीं।"

"कोई नहीं ? तो फिर रहोगी कहाँ ?"

"किसीका घर खोज लूँगी।"

"उसके बाद ?"

मालती चुप हो रही।

सुरेन्द्र बाबूने पूछा—तुम भोजन बनाना जानती हो ?

"जानती हूँ।"

"कलकत्तेमें अगर कहीं रोटी बनानेका काम मिल जाय तो वहाँ रहोगी ?"

"हाँ।"

सुरेन्द्र बाबू कुछ देर चुप रहे। फिर धीरे धीरे बोले—मालती, कलकत्तेके अलावा और कहीं यह काम मिले तो करोगी क्या?

मालतीने सिर हिलाकर कहा—नहीं।

जान पड़ा, जैसे सुरेन्द्र बाबू इस उत्तरसे कुछ असन्तुष्ट हुए। और कुछ देर सोच-विचारकर उन्होंने कहा—कलकत्तेमें जो पानेकी आशा करती हो उससे दुगना-चौगुना और जगह मिलने पर भी नहीं करोगी क्या?

मालतीने पहले ही की तरह नासमझी जाहिर करते हुए सिर हिलाकर कहा—कलकत्तेके सिवा मैं और कहीं नहीं जाऊँगी।

सुरेन्द्रनाथने एक लम्बी साँस छोड़ी। उनका मुँह देखकर मालती समझ गई कि उसका उत्तर सुरेन्द्रनाथके मनके माफिक नहीं हुआ। संभवतः इससे उन्हें असन्तोष अनुभव हुआ है।

सुरेन्द्र बाबूने दूसरी ओर ताकते हुए कहा—जो लोग कलकत्तेको नहीं जानते उनके लिए कलकत्ता बहुत बुरी जगह है। तुम्हारा जो जी चाहे करो, लेकिन कलकत्तेमें बहुत सावधानीसे रहना। और एक बात है। मेरा नाम सुरेन्द्रनाथ चौधरी है। नारायणपुरमें मेरा घर है। अगर कभी कोई जरूरत आ पड़े तो मुझे खबर देना या मेरे घर चली आना। हो सकता है कि आपत्ति-विपत्तिमें तुम्हारा कुछ उपकार कर सकूँ।

मालती सिर झुकाये चुपकी बैठी रही।

"हम एक सप्ताहके बाद कलकत्तेकी तरफ लौटेंगे। तब तक तुम इसी बजरेमें रहो। जब मैं कलकत्ते पहुँचूँगा तब उतर जाना।"

सुरेन्द्र बाबू उठकर चले गये। मालती वहीं बैठकर रोती रही। सुरेन्द्र बाबूकी करुणा उस कन्या पहुँची थी लेकिन उसके रोनेके और भी सैकड़ों कारण थे। सुरेन्द्र बाबूने उसकी रक्षा की है, बजरेमें स्थान दिया है, और भी अधिक उपकार किया है और भविष्यमें करनेको कहा है किन्तु यह क्या केवल रोटी बनानेकी नौकरीके लिए कलकत्ते जा रही है? स्नेहमयी माता, बीमार भाई, असहाय परिवार को घर छोड़ आई है तो क्या केवल दूसरोंकी रोटी पकाकर अपना पेट पालने ही के लिए? पाचिकाका काम तो एक बहाना मात्र है। वह धन कमाना चाहती है, और कलकत्तेके सिवा यह धन कहीं मिल सकता है? धन कमानेकी राह भी उसने सोच ली है। मालती रूपसी युवती है। यह

उसे मालूम हो गया है कि उसके शरीरमें कम दमखम पड़ता है। कलकत्ता बड़ा शहर है। वहाँ यह रूप लेकर जानेसे उसे कमानेकी चिन्ता न करनी पड़ेगी। शायद आशा भी जितनी नहीं की जा सकती है उतना धन मिल सकता है। इसीसे कलकत्ता जानेके लिए उसने इतनी दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली है। वहाँ उसका आदर होगा, गरीबकी धनवाली होगी, कष्टसे जीवन कट रहा था, अब सुखसे बीतेगा। फिर भी मालती रोती क्यों है? हम नहीं जानते—उसकी बात है, वही जाने।

दूसरे दिन हलदपुर गाँवके नीचेसे बजरा जाने लगा। मालती बजरेकी खिड़कीकी झिलमिली खोलकर चुपके पानीको निहारने लगी। पानीमें कोई आदमी उस समय न था। जिस आशासे मालती ऊपर ताक रही थी, वह पूरी नहीं हुई। गाँव छोड़कर बजरा दूर निकल गया। मालती खिड़की बन्द करके फूट-फूटकर रोने लगी। जयावती पास आकर बैठ गई। मालतीके आँसू पोंछकर स्नेहके साथ बोली — ऐसेसे अब क्या होगा बहन! उन लोगोंके दिन पूरे हो गये न, इसीसे गंगामैयाने उन्हें अपनी गोदमें ले लिया।

जयावतीने समझा कि नाव डूबनेसे परिवारके जो डूबकर मर गये हैं, उनके लिए मालती रो रही है। मालती आँसू पोंछकर उठ बैठी। जयावती अवस्थामें मालतीसे बड़ी है, उससे स्नेह करती है, उसे छोटी बहनकी तरह मानती है। खासकर यह सुनकर कि मालती कलकत्तेमें उतर जायगी, उसका स्नेह और भी बढ़ गया है। मालतीके बैठनेपर जयावती और तरह तरहकी बातें छेड़कर उसे बहलानेकी चेष्टा करने लगी।

३

हिन्दुओंका विश्वास है कि काशीधाममें विश्राम होनेपर शिवलोक प्राप्त हो जाता है। इसीसे सदानन्दकी बुआ काशी जाकर फिर नहीं लौटीं, वहीं उनका स्वर्गलाभ हुआ। सदानन्द बुआकी पवित्र देहको गंगाके किनारे जलाकर, उनके निगरान एक शिष्यको रहनेकी सुव्यवस्था करके हलदपुरको लौट आया।

शून्य घरमें बहुत दिन बाद प्रवेश करके सदा पागलने अपने हाथसे दो रोटियाँ सेंककर खाईं। एक बार सोचा, उसी समय हारान बाबूके घर जाकर वहाँकी खबर ले आवे; किन्तु इतनी जल्दी देखने-सुननेकी—जब

सुविधा नहीं हो सकती, यह सोचकर बिछौना बिछाकर पड़ रहा। काशीमें रहते समय वह हारान बाबूके बुरे चरित्रकी बात, शुभदाके दुर्भाग्यकी बात, ललनाकी फूटी तकदीरकी बात बराबर सोचा करता था। रोगी कुमारकी सेवामें लगे रहने पर भी वह इन लोगोंको भूल नहीं सकता था। बीचमें एक बार चिट्ठी लिखकर उसने यहाँके समाचार जान लिये थे, लेकिन उसके बाद फिर किसी ओरसे पत्र-व्यवहार नहीं हुआ। सदानन्द भी इसीसे लगभग एक महीने भर उनकी कोई खबर नहीं पा सका। अपने गाँवमें लौट आकर वह उन्हीं सब बातोंको याद करने लगा। बहुत रात गये तक जागते रहकर—क्योंकि नींद ही नहीं आई—ऊपरके कोठेकी ओर एक दृष्टिसे ताकते रहकर वह सोचने लगा कि पत्थरके ऊपर कमलका फूल खिलता है कि नहीं। ललनाने उसकी इस बातपर कहा था कि मिट्टीके बिना फूल नहीं खिलता। उसका यह कहना ठीक है कि नहीं। और यह बात जिसने कही, उसने कैसे जाना कि पत्थरके ऊपर कमल नहीं खिल सकता। जो कुछ हो, पिछले पहर सो जानेके पहले सदानन्दने यह तय कर डाला कि ऊपर आकाशमें पत्थरके ऊपर कमल फूल सकता है, किन्तु इसपर अधिक दिनोंतक टिक नहीं सकता। उसके सूख जानेकी अधिक सम्भावना है। जान पड़ता है, सूखता ही जा रहा है।

दूसरे दिन श्रीमान् सदानन्द चक्रवर्ती महाशय फल, मिठाई, बिस्कुट-चीनी मसाला इत्यादि बहुत-सा सामान हाथमें लिये एकदम हारान बाबूके घरमें आकर उपस्थित हुए।

भीतर घुसते ही सामने शुभदा देख पड़ी। वह आँगन बुहार रही थी। झाड़ू फेंककर, माथेपरका आँचल जरा आगे खींचकर शुभदाने धीरेसे पूछा—तुम कब आये सदानन्द?

"कल रातको।"

"सब अच्छी तरह हैं न?"

सदानन्दने दुर्दिन भावसे जरा हँसकर कहा—सब और कौन है? एक कुमारी थी सो वह काशीमें ही स्थान पा गई।"

शुभदा अच्छी तरह समझ नहीं पाई। बोली—क्या पा गई?

"कुमारीकी मृत्यु काशीमें ही हो गई।"

सुभद्राको इसकी खबर न थी। उसका अपना शोक इस शोकसे उमड़ पड़ा। सुभद्रा रोने लगी। बहुत देर बाद बोली—भैया, अम्मा भी नहीं है।

सदानन्दने विस्मित होकर कहा—नहीं है? कहाँ गई?

सुभद्राने धीरे-धीरे कहा—और कहाँ जायगी। उन्होंने संसारके दुःख-कष्टसे अपने प्राण दे दिये—आत्महत्या कर ली। आज पाँच दिन हुए, गंगाके किनारे उसकी पहननेकी धोती मिली है।

सुभद्रा फफककर रो उठी।

सदानन्दने भी अपनी आँखोंके आँसू पोंछे किन्तु आँसू एक बूँद या दो बूँद ही थे। इसके बाद सुभद्रा जब तक शान्त नहीं हो सकी, तब तक वह स्थिर होकर बैठा रहा। सुभद्राके शान्त होनेपर सदानन्दने कहा—कुछ पता नहीं लगा?

"कुछ नहीं।"

"हरलालदादा कहाँ हैं भाभी?"

सुभद्राने आँखोंके आँसू पोंछकर कहा—कह नहीं सकती। कभी कभी घर चक्कर आ जाते हैं।

"वह आजकल क्या करते हैं?"

"यह भी नहीं जानती।"

"मामाका क्या हाल है?"

"जैसा पहले था, वैसा ही है।"

"और सब लोग?"

"अच्छे हैं।"

सदानन्द जानेके लिए उठने लगा। सुभद्राने पूछा—तुम्हारे यहाँ खानेका कौन बनायगा? सदानन्दने कहा—मैं आप बनाऊँगा।

सुभद्राने जरा सोचकर कहा—यहीं न खा लेना।

सदानन्दने कहा—खानेमें कौन हर्ज है? लेकिन उसकी जरूरत क्या है? रोटी बनानेका मुझे अभ्यास हो गया है—कोई कष्ट न होगा।

"न हो, लेकिन नहीं, आज तुम यहीं खाना।"

सदानन्दने कुछ सोचकर कहा—लेकिन आज नहीं। आज मुझे कुमारीका तर्पण करना है।

सुभद्राने सोचा—ऐसा ही होगा। इसीसे उसने फिर कुछ नहीं कहा।

है। हम लोगोंको इस बारेमें विचार करनेका कोई अधिकार नहीं है। और यह मतलब भी नहीं जान पड़ता।—खैर, मैंने उससे कहा—मैं तुमसे ब्याह नहीं कर सकूँगा।

"वह चली गई?"

"ना। तब भी नहीं गई। उलटा ब्याह करनेके लिए कहने लगी।"

"पर तुमने स्वीकार नहीं किया?"

सदानन्दका चेहरा देखकर और उसके मनके भावको अनुमानसे जानकर, जरा हँसकर शारदाचरणने कहा—अस्वीकार भी नहीं किया। मैंने कहा था कि बाबूजी राजी हों तो कर सकता हूँ।

"तुम्हारे पिता राजी नहीं हुए?"

"ना।"

"क्यों?"

"कहनेकी इच्छा नहीं थी, लेकिन कहता हूँ, सुनो। बाबूजी मेरे ब्याहसे कुछ पैसा कमाना चाहते हैं। हारान बाबू क्या यह दे सकते?"

सदानन्दने यह बात सुनकर भी वैसे नहीं सुनी। बोला—तुम्हारे पिता कितना पानेकी आशा करते हैं?

"यह तो मैं कह नहीं सकता।"

"उनकी आशा पूरी होनेपर और कोई आपत्ति तो नहीं हो सकती?"

"न होना ही सम्भव है।"

"तुम्हें खुद तो कोई आपत्ति नहीं है?"

"कुछ नहीं।"

"तो फिर देखा जायगा।"

कहकर सदानन्द फिर झाड़-झंखाड़ रौंदता हुआ और चला।

शारदाचरणने पूछा—कहाँ जाते हो? जरा देर बैठोगे नहीं?

"ना।"

"सच्चे सदानन्द इसमें मेरा कोई दोष नहीं है।"

"शायद नहीं है—भगवान् जाने—मैं नहीं कह सकता।"

"नाराज हो गये?"

"नहीं।"

सदानन्द घर लौटकर कुछ देर इस कोठरीसे उस कोठरीमें आया-गया। इसके बाद वह फिर घरसे निकल पड़ा। गंगा-किनारे जो राह जाती थी, उस पर चलने लगा। गंगाजीकी छोटी-छोटी लहरें घाटकी सीढ़ियोंसे टकराकर छल-छल छल-छल करती हुई आती हैं और लौट जाती हैं। सदानन्द कुछ देर तक उन लहरोंका यह खेल देखता रहा। दूर पर एक बड़ा-सा बजरा छप-छप डाँड़ चलाता हुआ मदान्ध गंगाकी छाती पर तैरता आ रहा था। सदानन्द अन्यमनस्क भावसे कुछ देर तक उसकी ओर ताकता रहा। इसके बाद घाटकी सबसे निचली सीढ़ी पर बैठकर पानीमें पैर डुबाकर आकाशकी ओर ताकता हुआ मनकी मौजमें कुछ गाने लगा।

४

उसी दिन रात्रिके समय चाँदनीसे धोये हुए मदान्ध गंगाके वक्ष पर भाटेके प्रवाहमें तैरता-उतराता हुआ सुरेन्द्र बाबूका बड़ा बजरा, धीरे धीरे हाथ चलानेकी तरह छप-छप करके दो डाँड़ चलाता हुआ, उत्तरसे दक्षिणकी ओर आ रहा था।

छतके ऊपर सुरेन्द्र बाबू और जयावती, दोनों बैठे बातें कर रहे थे। नीचे कमरेमें खिड़की खोले मालती गंगाके वक्षःस्थलमें उठनेवाली छोटी छोटी लहरोंकी गिनती और आँखें पोंछती जाती थी। मालती समझ गई कि अब हलदपुर आ रहा है। और कुछ दूर आने पर उसे गंगा-किनारेका वह पुराना पीपलका पेड़ दिख पड़ा। उसके पास वाला घाट चन्द्रमाकी किरणोंमें चमचमा रहा था—यह भी देखा। और उसके पीछे हलदपुर गाँव बसा हुआ निस्तब्ध पड़ा हुआ था। मालती [illegible] प्रत्येक पथ, प्रत्येक नर-नारीको निर्निमेष [illegible] मनके नेत्रोंसे देखने लगी। और यह घाट—यह सब कल्पना नहीं, परिचित थी। तब दोनों बेला इसी घाट पर नहाती थी, कपड़े धोती थी, हाथ पैर और देह धोया करती थी। इसी घाटसे कलसी भरकर जल ले गये बिना पीनेका और रसोईका काम नहीं चलता था। मालती अब मालती है—वह अब ललना नहीं है, तो भी उस घाटका मूल्य नहीं घट सकता, श्मशान भूमिका मूल्य नहीं घट सकता। इसीसे वह देखती थी और देख-देखकर रोती थी। और सदानन्द पगलेको भी वह किसी तरह भूल नहीं सकेगी। इसके बाद ही मालतीने यह

खोलकर देखा था। मालतीने सोचा—छगना, बिन्दो, कृष्णाबुआ, सिरिबाला, रेवन्ती, रमा—कोई नहीं, कोई नहीं, सदानन्द ही अपना पागल चेहरा लिए हुए उसकी स्मृतिके आवेशसे अधिक मात्रामें जमा हुआ बैठा है—कानोंमें उसीके गान गूँज रहे हैं।

मालतीको भान पड़ा, जैसे सदानन्द पागलका प्रफुल्ल मधुर स्वर करुण होकर अस्पष्ट-सा कहींसे आकर उसके कानोंके भीतर पहुँच रहा है। मालतीको विस्मय हुआ। वह स्तब्ध होकर सुनने लगी—जैसे कोई ठीक सदानन्दहीकी तरह गीत गा रहा है। घबरा और कुछ आगे बढ़ आया। मालतीने देखा, घाटके नीचे बसी पेड़ दूरसे एक आदमी बैठा है। लेकिन गीत बन्द हो गया है। वह आदमी कौन है, वह ठीक पहचान न पाने पर भी मालतीको लगा मालूम पड़ा कि वह सदानन्दके सिवा और कोई नहीं है। पागल-सनकी आदमीके सिवा इतनी रातको और कौन माता गंगाको गीत सुनाने आयेगा? सोचने-विचारनेपर फिर उसमें कोई सन्देह नहीं था। तब मालती फिर रोने लगी। सिसकी ही सदानन्दकी बातें याद आने लगीं, उसकी ही स्मृतियाँ याद आने लगीं। घुमरा, रचना, माधव बुआ और अभागे हसन मुखर्जी, सभी सदानन्दकी बातके आस-पास घूम-फिरकर आने लगे। अन्तको बहुत रात गये रोते-रोते मालतीको नींद आ गयी।

नींद खुली, सवेरा हुआ, क्रमशः सब निश्चय, दिन चढ़ने लगा। लेकिन मालतीसे उठा नहीं गया। सारी देहमें दर्द हो रहा था। देह गरम हो आयी थी। सिर चमक रहा था। और भी अनेक उपद्रव उठ खड़े हुए थे। रचनीने आकर देहपर हाथ रखकर देखा और कहा—तुम्हें तो देखती हूँ, बुखार है। मालती चुप रही। बपाजीने आकर देहपर हाथ रखकर देखा। खिड़की खुली देखकर बस मीठी डाँट बतायी। कहा—इस तरह कहीं खिड़की खोलकर ठण्डी हवामें सोना चाहिए? रात भर पुरवैया हवा आनेसे ज्वर हो आया है।

मालतीने धीमी जबानसे कहा—सो गयी थी, इसीसे खिड़की नहीं बन्द हुई।

सुरेन्द्र बाबूको खबर हुई तो वह खुद देखने आये। सचमुच बुखार था। उनके पास होमियोपैथिक दवाओंका बक्स था। उसमेंसे दवा निकालकर उन्होंने दी और बपाजीसे ताकीदसे कह दिया कि रोगीको सावधानीसे रहे। बपाजी मालतीके पास आकर बैठीं। खिड़की खिड़कियाँ सब बन्द थीं। मालती

कुछ नहीं देख पाती थी। क्या चल रहा है या खड़ा है, यह भी वह ठीक समझ नहीं पा रही थी। कमरेमें यशस्वतीके सिवा और कोई नहीं है, यह देखकर मालतीने कहा – दीदी, हम कितनी दूर आ गये हैं?

यशस्वतीको वह दीदी कहने लगी थी।

" आठ-दस कोसके लगभग आये होंगे।

मालतीने यह नहीं जानना चाहा था। उसने कहा—कलकत्ता अब कितनी दूर रह गया है?

" अभी दो दिनकी राह है।"

मालती चुप रहकर कुछ सोचने लगी। फिर बोली—दीदी, अगर दो दिनमें मेरी तबियत ठीक नहीं हुई?

यशस्वती उसकी बातको समझ गई। स्त्रियाँ ऐसे समय मनमें ईर्ष्या नहीं रखतीं। इसीसे जरा हँसकर उसने कहा – तो हम तुमको रास्तेमें छोड़ देंगे।

मालती भी जरा हँसी। किन्तु यशस्वती हँसी और मालतीकी हँसीमें थोड़ा फर्क था। मालती बोली—यही अच्छा होगा दीदी।

यशस्वती कुछ अप्रतिभ हुई। उसने यह सोचकर पहले नहीं देखा था कि उसकी इस बातका दूसरी तरहका भी कुछ अर्थ हो सकता है। बोली—छि: ऐसी बात भी कोई ज़बान पर लाता है?

मालती फिर चुप हो गई – कुछ उत्तर नहीं दिया। वह चुपचाप सोचकर देख रही थी कि यशस्वतीकी ही बात सच हो तो कैसा हो? क्या अच्छा हो? नहीं, अच्छा न होगा। वह मरना नहीं चाहती। उससे कोई अच्छी तरह पूछे तो वह कहेगी कि यद्यपि वह मरनेसे अधिक कष्ट पा रही है, तथापि मर नहीं सकेगी। मरनेसे वह डरती नहीं, तथापि उसे मरनेकी इच्छा नहीं है। जो लोग यह इच्छा कर सकते हैं, उनका दुःख इतना अधिक नहीं है।— उसकी आँखोंसे दो बूँद आँसू टपक पड़े।

यशस्वतीने प्यारसे उसकी आँखें पोंछ दीं। बोली—चिन्ता क्यों करती हो बहन? पुरवाई हवा लगनेसे ज़रा कुछ गरम हो आई है, इसके लिए चिन्ता करनेकी कोई ज़रूरत नहीं।

इसके उपरान्त कुछ सोचकर, सावधान होकर उसने कहा—अगर के

हुआ, तुम्हारी तबियत ठीक न हो सकी, तो भी एक उपाय है। पास ही कलकत्ता है—वहाँ डाक्टर-वैद्योंकी क्या कमी है?

चिकित्सकोंकी कमी कुछ नहीं थी और जरूरत भी कुछ नहीं हुई। जहाँ जिस दिन कलकत्तेमें आकर पहुँचा, उस दिन मालतीको बुखार बिलकुल नहीं था, लेकिन शरीर बड़ा दुर्बल था, अभी उसने कुछ खानेको नहीं पाया था। कलकत्ता छोड़कर, कुछ दूरपर दूसरे किनारेपर बगीचेमें डेरा डाला गया। कमरेकी खिड़की खुली थी; मालती सिर निकालकर जहाज, मस्तूल, बड़ी-बड़ी नावें और महलों जैसे बड़े और ऊँचे मकानोंकी चोटियाँ देखने लगी। मालतीको डर मालूम हो रहा था। यही क्या कलकत्ता है? तब तो इस भीड़-भाड़ और इतने गुल-गपाड़ेमें कौन किसकी बात सुन पावेगा? इतने बड़े शहरमें कौन उसकी ओर देखनेकी फुरसत पावेगा? किन्तु यह तो न होगा—उसे यहाँ जाना ही होगा। जिसके लिए उसने इतने साहसका यह काम कर डाला है, जिसका मुँह देखकर—जिसका दुःख दूर करनेके लिए उसने नरकमें डूबनेका इरादा कर लिया है—इस लोक और पर लोककी किसी भी बातको मनमें स्थान नहीं दिया, उसके उस मुखकी यह इतनी बड़ी भूख नहीं रहेगी। आज न हो कल सही, यह आश्रय छोड़ना ही होगा तब डरकर क्या होगा?

उसने कलकत्ते जानेका पक्का इरादा कर लिया; किन्तु सुरेन्द्र बाबूने यह प्रचार कर दिया कि बस तीन-चार दिन और यहीं रहना होगा। मालतीका शरीर जब बिलकुल ठीक हो जायगा, तब उसकी जहाँ इच्छा हो वहाँ जायगी। जगह भी उसी समय खोज ली जायगी। यह सुनकर मालतीने मन ही मन उनको हजारों धन्यवाद दिये। मनमें यह बात बनी रही थी; क्योंकि चाहे जितना बड़ा उसका कर्तव्य हो, आश्रय छोड़कर बाहरके पथमें जानेके लिए मनको सहजमें राजी नहीं किया जा सकता। इसके पहले ही यह इसी बातके लिए अपने मनके साथ झगड़ा कर रही थी—अब जैसे रस्सीकी ढील देकर समझा-बुझाकर यथासम्भव लगाम एक तरहसे मनको मनानेका उसे मौका मिल गया।

दूसरे दिन दोपहरके समय जयारानीने कलकत्ता घूमने जानेका निश्चय किया। मालतीके लिए गाड़ी और पालकी (दोनों ही) ठीक करके नौकरने खबर दी। जयारानीने साथ चलनेके लिए सुरेन्द्र बाबूसे बहुत कहा, पुत्रवधूने भी,

लेकिन वह किसी तरह चलनेको राजी नहीं हुए। मालतीने जाना चाहा था, मगर बाबूने मना कर दिया—कहला भेजा कि उनकी तबियत ठीक नहीं है, फिर बुखार आ सकता है। तब लाचार होकर ब्रजरानी अकेले ही दासी और नौकरको साथ लेकर घूमने चली गई।

मालती कमरेके भीतर खड़ी हुई थी। सुरेन्द्र बाबू दरवाजा ठेलकर भीतर दाखिल हुए। मालती संकुचित होकर उठ बैठी। सुरेन्द्र बाबू कुछ दूरपर बैठ गए। बहुत देर इसी तरह बैठे रहे। वह कुछ कहनेका इरादा करके आये थे लेकिन कहनेका साहस नहीं होता था। बहुत देर बाद बड़ा कष्ट करके, बड़ा सोच कर बोले—तुम क्या निश्चय ही [illegible] उतर जाओगी?

सिर हिलाकर मालतीने कहा—हाँ।

"तुमने क्या अच्छी तरह सोच-विचारकर देख लिया है?"

"देख लिया है।"

"कहाँ जाओगी?"

"सो तो कुछ नहीं जानती।"

सुरेन्द्र बाबू हँस पड़े। बोले—तो फिर क्या सोचकर देखा है? आज नहीं, कल कलकत्ते जाकर एक बार कलकत्तेका भीतरी रंगढंग देख आओ, उसके बाद अगर निश्चिन्तको छोड़कर अनिश्चित ही अच्छा लगा तो चली जाना। मैं मना नहीं करूँगा।

मालती कुछ नहीं बोली।

सुरेन्द्र बाबू कुछ देर चुप रहकर फिर पहलेसे अधिक उदास भावसे बोले—तुमने इस बातमें जितना नहीं सोचा होगा, उतना मैंने सोच-विचारकर देखा है। तुम भले घरकी कन्या हो—और भीखवृत्ति या नीच काम नहीं कर सकोगी। भले आदमीकी लड़की तुम किसी भले घरमें प्रवेश न कर पाओगी तो वहाँ रह नहीं सकोगी। इस दशामें असहाय होकर, बिना किसी सहारेके किस तरह इतने बड़े शहरमें तुम आश्रय खोज सकोगी, यह मेरी समझमें नहीं आता।

कुछ देर ठहरकर बाबूने फिर कहा—और यह भी गौर करके देखो कि तुम्हारी यह अवस्था है। इस अवस्थामें इज्जत-आबरू बचाए रखना, असम्भव

सँभालकर क्या तुम चल सकोगी ? मुझे डर है कि तुमको पग पगपर विपत्तिका सामना करना पड़ेगा।

मालती चुपचाप रो रही थी। उसने इन सभी बातोंपर विचार करके देखा था; लेकिन उसके लिए इसके सिवा और कोई उपाय न था कि वहीं उतर जाय। यह हम पहले ही कह चुके हैं।

सुरेन्द्र बाबूने समझ लिया कि मालती रो रही है। उन्होंने मालतीको पहले भी रोते देखा था; किन्तु इस समय उन्हें और ही कुछ जान पड़ने लगा। उन्होंने कहा — तो फिर तुमने जाना ही तय कर लिया है ?

मालतीने आँखें पोंछकर सिर हिलाकर कहा — जी हाँ।

नारायणपुरके जमींदार सुरेन्द्र बाबूको बहुत लोग मूर्ख या भोंदू समझते थे किन्तु वास्तवमें वह भोंदू नहीं थे। जो लोग उन्हें भोंदू कहते थे, उनसे भी जान पड़ता है, वह सौगुना अधिक बुद्धिमान थे; किन्तु अनेक समय वह दुर्बल प्रकृतिवाले मनुष्यकी तरह काम करते थे, इसीलिए उनको सहजमें नहीं पहचाना जा सकता था। मालतीके मनकी बात वह ताड़ गये। वह जरा हँसे। उसके बाद मालती जब पहलेकी अपेक्षा कुछ चुप हुई, तब उन्होंने कहा — मालती, तुम्हें रुपयोंकी बड़ी जरूरत है न ?

मालतीके आँसू फिर उमड़ पड़े। जान पड़ता है, धनका इतना प्रयोजन दुनियामें और किसीको नहीं है।

“ बड़ी जरूरत है—क्यों न ?”

मालतीने रोना कुछ कुछ बन्द करके टूटी-फूटी बातोंमें कहा — बड़ी जरूरत है।

सुरेन्द्र बाबू हँसे, अब उन्हें समझनेको कुछ बाकी नहीं रहा। परन्तु दुःख रहनेपर भी उनको हँसी आई, इसका कारण यह था कि सुरा संगके दोषसे वह यह भूल गये थे कि इन सब (रूप यौवनशालियों) के भी रोनेका यथार्थ कारण हो सकता है, ये सभी पैसोंके लिए नहीं रोतीं। कुछ हँसकर और कुछ हँसी दबाकर उन्होंने कहा—तो फिर तुम रोती क्यों हो ? तुम रूपवती हो, जवान हो, कलकत्ते जा रही हो। अब तुमको धनकी चिन्ता नहीं करनी होगी। कलकत्तेमें रुपया गली-गली बिखरी पड़ी देख पाओगी।

मालतीको जान पड़ा, अकस्मात् वज्राघातसे उसका सिर धड़से अलग होकर नीचे गिर पड़ा है। अब इस खिड़कीसे गंगामें कूद पड़नेमें भी विशेष क्षति न

होगी। मालती ऐसा ही कुछ करने जा रही थी; किन्तु सहसा उसे जान पड़ा, इसमें बाधा पड़ी। वह मूर्च्छित होकर और एक आदमीकी गोदमें गिर पड़ी है किन्तु उस गोदमें जैसे आग छिपी है। वह बड़ी कठिन और रूखी हुई है। उसमें प्रेम तिलभर भी नहीं है—तनिक भी कोमलता नहीं है। सब पत्थर है, सब अभिमान है। मूर्च्छित अवस्थामें भी मालती सिहर उठी। जब उसे होश आया, तब उसे जान पड़ा कि वह किसीकी गोदमें नहीं लेटी है। आँखें खोलकर देखा, अपनी शय्यापर ही पड़ी है। किन्तु सुरेन्द्र बाबू उसके पास उसकी मुँहकी ओर ताकते हुए बैठे हैं। लज्जासे उसका मुँह लाल हो गया। दोनों हाथोंसे मुँह ढककर उसने करवट बदल ली।

कुछ देर बाद सुरेन्द्र बाबूने कहा—मालती एक मासबाद मैं बासा छोड़ दूँगा; लेकिन तुमको नहीं छोड़ दूँगा। तुमको मेरे साथ जाना होगा। साँस थामकर मालती सुनने लगी। सुरेन्द्र कहने लगा—जिसके लिए तुम भागके जाना चाहती हो वह तुमसे हो न सकेगा। जान पड़ता है, तुमने पहले यह वृत्ति कभी नहीं की—अब भी नहीं कर सकोगी। तुम्हें जितने धनकी जरूरत होगी, जितने सुख और स्वच्छन्दताकी अभिलाषा होगी, वह मैं तुमको दूँगा।

मालतीकी रुकी हुई साँसके साथ आँखोंमें आँसू निकल आये। सुरेन्द्र बाबूने यह समझा। बड़े प्यार और यत्नसे मालतीको अपनी गोदमें खींचकर बोले—मालती, मत ताप करो। मैं खूब धनी न होनेपर भी दरिद्र नहीं हूँ—तुम्हारा खर्च मजेमें उठा सकूँगा। और तुम्हीं बताओ सत्य, मैं अगर तुम्हें यहाँ छोड़ जाऊँ तो क्या तुम जीती रहोगी? या मैं ही शान्त मनसे अपने घर लौट सकूँगा?

सुरेन्द्र बाबूने उसे और भी हृदयके पास खींच लिया स्नेहके साथ आँसू पोंछ दिये—आदरसे, छि छि—लज्जासे संकुचित उन होठोंको चूमकर बोले—क्यों, तो चलोगी न?

मालतीके सारे शरीरके रोएँ खड़े हो गये, सारी देह काँप उठी। वह अब वह पहलेकी ललना नहीं है, वह मालती है अब। वह और कोई नहीं है, इस समय जो है वरन वही है। सुरेन्द्रनाथकी चिर-संगिनी, आजन्म-प्रणयिनी। यह सीता, यह सावित्री, यह दमयन्ती—मगर अब सीता-सावित्री नाम लेनेकी क्या जरूरत! वह पापी, वह अपराधी है। किन्तु इसमें ही

हानि क्या है? सुख, शान्ति, स्वर्गकी गोदमें मान-अपमान क्या है? कल्पना अर्थात् वर्तमान मालती निस्पन्द, अचेतन स्वर्ण-प्रतिमाकी तरह सुरेन्द्रनाथकी गोदमें पड़ी रही। यह गोद अब अरण्यमय, कंकड़, पत्थर और अंधकारोंकी सेज नहीं है—अब यह शान्त, स्निग्ध, कोमल, अमृत-मधुर है। कल्पनाको जान पड़ा, इतने दिन उसे शाप-सा क्या हुआ था, अब फिर स्वर्गमें आ गई है। इतने दिन बाद उसने अपना खोया गया धन फिर पाया है। मालतीके सिकुड़े हुए होंठ फिर फैल गये। सुरेन्द्रनाथ उन होठोंको बार-बार चूमते हैं और पापकी पहली सीढ़ी उतरकर, अपनेको भूलकर कल्पना स्वर्गसुख भोग रही है। उस समय सूर्य अस्ताचलको जा रहे थे, खुली खिड़कीकी राहसे वह पास ही चित्र देखते गये। उस समय तीसरे पहरकी सुनहली किरणोंके स्पर्शसे सुरेन्द्रनाथकी नजरमें कल्पनाका मुखमण्डल पहलेसे हजारगुना मनको मोहनेवाला जान पड़ा। उन्होंने हजार आवेशसे, हजार तृष्णासे उस मुखको फिर चूमकर कहा—मालती, तो चलोगी न?

"चलूँगी।"

सुरेन्द्रनाथ उन्मत्त हो उठे—तो चलो, अभी चलें।

"लेकिन दीदी?"

"कौन दीदी?"

"तुम्हारी स्त्री।"

सुरेन्द्रनाथ जैसे चौंक पड़े। वह सिहर उठे। बोले—मेरी स्त्री! उसे मरे तो बहुत दिन हुए।

"यह बताओगी?"

सुरेन्द्रनाथने सूखी हँसी हँसकर कहा—पता मरी भी नहीं है। उससे मैंने कभी प्यार नहीं किया।

"तो फिर वह क्या है?"

"कुछ नहीं, कुछ नहीं। तुम मेरी सब हो, वह कोई नहीं है—तुम ही सब हो—सब कुछ हो।"

अबकी मालतीने दोनों हाथ सुरेन्द्रकी गर्दनमें डाल दिये—उनकी छातीमें मुँह छिपा लिया छि: छि:। रुद्धकण्ठ होकर बोली—मैं तुम्हारी चिरकालकी दासी हूँ—मुझे छोड़ना नहीं।

सुरेन्द्रने आवेगके साथ कहा—नहीं, अभी नहीं।

"तो फिर मुझे ले चलो।"

"चलो।"

"आज ही।"

"अभी, इसी घड़ी।"

इसी समय बाहर सैकड़ों लोग तरह-तरहकी आवाजोंमें चिल्ला उठे—पकड़ो—पकड़ो—डूब जायगा—अस्सा-अस्सा, चली गई—डूब गई—हाय-हाय इत्यादि। सुरेन्द्रनाथ दौड़कर कमरेके बाहर आये; साथ ही साथ माधवी भी निकल पड़ी। सुरेन्द्रनाथने देखा—इस पार, उस पार, चारों ओर माँझी-मल्लाह कुली-मजदूर सब जमा होकर चिल्ला रहे हैं और दूरपर गंगाकी बीच धारामें एक छोटी डोंगी स्टीमरसे टकराकर धीरे-धीरे डूबी जा रही है।

एक क्षणमें ही सुरेन्द्रनाथने घटनाको समझ लिया। वह चिल्ला उठे—उसमें मेरी बमा है।—साथ ही साथ वह जलमें कूदने पड़ रहे थे; किन्तु पास खड़ी माधवीने उनको पकड़ लिया। सुरेन्द्रनाथ पागलकी तरह छटपटा करके चिल्ला उठे—पकड़ो नहीं—पकड़ो नहीं—मेरी बमा डूबी जा रही है!

तब तक वह छोटी-सी डोंगी उस बड़े स्टीमरके नीचे धीरे धीरे डूब गई। सुरेन्द्रनाथ भी माँझी-मल्लाह, नौकर आदिके हाथोंमें मूर्छित हो गये।

५

"बमा!" होश आनेपर आँखें खोलकर सबसे पहले सुरेन्द्रनाथ आकुल भावसे कह उठे—बमा!

पास बैठी माधवी उनकी सेवा कर रही थी और अपने आँसू भी पोंछती जाती थी। सुरेन्द्रनाथने जिस तरह बमाको पुकारा, उससे वह और भी अधिक आँसुओंको पोंछने लगी। लेकिन सुरेन्द्रने ऊपर देखा नहीं। केवल एक बार उसकी ओर देखा था, उसके बाद आँखें मूँदे पड़े रहे।

बहुत देर तक इसी तरह पड़े रहनेके बाद एक बार आँख खोलकर कहा—बमाकी कोई खबर नहीं मिली?

पास ही एक पुराना नौकर खड़ा था। उसने कातर भावसे कहा—नहीं।

"खबर नहीं मिली? तो जान पड़ता है, अब वह जीवित नहीं है।"

नौकरने सोच-विचारकर कहा — जान तो यही पड़ता है।

"रात कितनी हुई?"

"दस बजे होंगे।"

"दस? तो भी खबर नहीं मिली?"

"जी नहीं।"

सुरेन्द्रने और अधिक हताश होकर माथेपर हाथ दे मारा। फिर कहा—तुम सब लोग जाओ—सारे शहरमें, सारे गंगाके किनारोंपर जाकर उसका पता लगाओ।

नौकरने मनमें सोचा, हुक्म बुरा नहीं है। मुँहसे कहा — जो आज्ञा।

फिर वहाँसे उठ आकर अपनी खाटपर लेट रहे।

कमरेमें — बिछौनेपर— मालतीके सिवा और कोई नहीं है। किन्तु सुरेन्द्रनाथ उससे नहीं बोले — चुपचाप बैठे-बैठे आँसू बहाते रहे। इसी तरह समय बीतने लगा। कमरेकी दीवालमें जो घड़ी लगी थी वह अपनी चालसे ग्यारहके बाद बारह, उसके बाद एक, दो, तीन, चार — इसी तरह अपने सब अंक बजाती चली गई; किन्तु किसीने उधर ध्यान दिया हो, ऐसा नहीं जान पड़ा।

सुरेन्द्रनाथ इधर उधर करवट बदल रहे थे। मालती पास बैठी उनकी यन्त्रणा देखने लगी और आँसू पोंछने लगी। ज्वर भी बढ़ा हुआ है, लगा हुआ है और उससे अधिक मन ऊपर छाया हुआ है। वह अपना भूत, भविष्य और वर्तमान पर विचार कर रही थी।

एक तो कलकत्तेमें गली-कूचोंपर रातभर सन्नाटा नहीं रहता, दूसरे अब तो चार बज गये हैं। चारों ओर थोड़ी-बहुत लोगोंके जागनेकी आहट मिल रही है। लड़कोंके चलने-फिरने और आने-जानेका शब्द होने लगा है।

सुरेन्द्रनाथ एकाएक उठकर बैठ गये, मालतीकी ओर ताकते रहे, फिर कुछ देर बाद बोले — रातभर बैठकर जागनेसे कोई लाभ नहीं। तुम जाकर सोओ।

मालती उठकर जा रही थी। सुरेन्द्रने उसे पुकारकर कहा — बैठो, जाओ नहीं; तुमसे कुछ कहना है।

मालती दो पग आगे बढ़ गई थी; फिर लौटकर पहले ही की जगहपर बैठ गई।

सुरेन्द्रनाथने एक बार आँखें उठाईं, एक बार जैसे क्या कहेंगे, पर मौन लिया, उसके बाद गम्भीर स्वरमें बोले—मालती, किसके पापसे यह हुआ ?

मालतीके सिरपर जैसे आकाश टूट पड़ा। यह बात पहले ही वह बहुत बार अपनेसे पूछ चुकी थी। उत्तर भी एक तरहसे उसने पा लिया था। किन्तु यह कहनेमें उसका मुँह नहीं खुला, इसीसे वह सिर झुकाये निरुत्तर बैठी रही।

सुरेन्द्र बाबूने भी यह कहनेका विचार किया था, पर न कहकर कहा—अच्छा यह बात फिर होगी—इस समय तुम जाओ।

मालती घरमें आकर अपने कमरेमें लेट रही। किन्तु क्या उसे नींद आई ? नहीं। सारी रात बारबार करवट पर करवट बदलती रही। अनेक बार उठकर बैठी, अनेक बार लेटी। अनेक देवी-देवताओंके नाम लिये, अनेक धर्म याद कीं। इसके बाद सवेरेके पहले तन्द्राकी झोंकमें तरह तरहके सपने देखने लगी। उसने देखा, जैसे वही आग मानो आँखोंसे छूटी उसका घर जल रहा है। कभी देखा, सदानन्द मनकी मौजमें गा रहा है। कभी देखा, उसकी मा शुभदा रो रही है। अकस्मात् जान पड़ा, जैसे माधव आकर उसके सिरहाने खड़ा है—वही किसी अज्ञात देशमें चलनेके लिए बार बार उसे उत्तेजित कर रहा है। मालतीकी वहाँ जानेकी इच्छा नहीं है लेकिन वह किसी तरह छोड़ नहीं रहा है। मालतीकी आँख एकाएक खुल गई। आँख खोलकर देखा, कहीं कोई नहीं है। केवल प्रातःकालकी सुनहरी किरणें खुली खिड़कीसे आकर उसके मुँहपर पड़ रही हैं। मालती पलंग छोड़कर बाहर आई।

उस दिन दिनभर सुरेन्द्रनाथ उसे नहीं दिख पड़े। कुछ पहले ही वह मकान छोड़कर चले गये थे। दूसरे दिन भी वह नहीं आये। तीसरे दिन शामसे पहले आकर अपने कमरेमें चले गये, और भीतरसे द्वार बन्द कर लिया। वह दिन भी ऐसे ही बीत गया। चौथे दिन उन्होंने मालतीको बुला भेजा। मालती भीतर आकर सिर झुकाये खड़ी रही।

सुरेन्द्र बाबू एक कागज लिए लिख रहे थे। जान पड़ता है, कहीं पत्र लिख रहे थे। मालतीने आज नजर उठाकर उनको देखा, उनका चेहरा बहुत ही उतरा हुआ था, आँखें लाल हो रही थीं, इतनेमें मानो उम्र भी बीसेक बढ़ी हुई थी। मालती आप ही आप सिहर उठी। उस समय जान पड़ा जैसे बहुत ही कठिन असाधारण विचारके लिए इन दिनोंमें व्यस्त रहा है।

सुरेन्द्र बाबूने आधा लिखा हुआ वह कागज एक ओर रखकर सिर उठाकर उसकी ओर देखकर कहा—तुम्हारा शरीर अब अच्छी तरह स्वस्थ हो गया है क्या?

माधवीने वैसे ही सिर झुकाये गर्दन हिलाकर कहा—हो गया है।

सुरेन्द्रने कहा—मैं आज जवाब लिख दूँगा। उस पार कलकत्ता है—तुम्हारा जहाँ जी चाहे जा सकती हो।

सुनकर माधवीकी आँखोंमें आँसू आ गये। पर उसने कुछ कहा नहीं।

सुरेन्द्र बाबूने एकदम कागज हाथमें लेकर कहा—यहाँ मेरे एक मित्र हैं। उनका पता लगाकर यह पत्र लेकर उनके पास जाओ। वह तुम्हारा कुछ उपाय कर देंगे।

टपसे एक आँसू माधवीकी आँखोंसे नीचे गलीचे पर गिर पड़ा।

जान पड़ता है, सुरेन्द्र बाबूने भी उसे देख पाया। जरा ठहरकर बोले—तुम्हारे पास रुपया-पैसा शायद कुछ भी नहीं है?

सुरेन्द्रनाथने फिर कहा—यह मैं जानता था। यह लो—

कहकर एक मनीबेग तकियेके नीचेसे निकालकर माधवीके पैरोंके पास फेंककर सुरेन्द्रने कहा—इसमें जो कुछ है उससे, किसी तरहका कोई उपाय न होने पर भी एक साल तक तुम्हारा काम मजेमें चल जायगा। उसके बाद ईश्वरके आशीर्वादसे जो हो सो हो।

और एक आँसूका बूँद फर्श पर टपक पड़ा।

सुरेन्द्रने कहा—उस दिन उन्मत्त था, इसीसे पूछा था कि किसके पापसे ऐसा हुआ। किन्तु अब मुझे होश आया है। अब देखता हूँ, मेरे ही पापसे यह सब है। तुम निर्दोष हो। अपनी बहनको मैंने ही मार डाला है।

माथे पर पसीनेकी कुछ बूँदें जमा हो रही थीं, उन्हें हाथसे पोंछकर सुरेन्द्रने कहा—बहुत हुआ—अब पाप न करूँगा। कुछ दिन जरा भागकर रहकर देखूँ—शायद इसमें सुख पाऊँ।

माधवी खड़ी रही, सुरेन्द्र बाबू यह पत्र समाप्त करने लगे। पत्र समाप्त होने पर सिरनामा लिखकर वह पत्र उन्होंने माधवीके आगे फेंक दिया। कहा—यह लो। श्यामबाजारमें पता लगा लेना। जान पड़ता है, इससे उपकार होगा।

काँपते हुए हाथसे माधवीने पत्र उठा लिया।

सुरेन्द्रने कहा—रुपये ले लो।

मालतीने रुपयोंका बटुआ भी उठा लिया। दरवाजेकी ओर एक पग बढ़ी।

सुरेन्द्र बाबूका जी जाने कैसा कर उठा। बोले—धर्मकी राहपर रहना।

मालती और एक पग बढ़ी। अबकी सुरेन्द्रनाथका गला काँपा—मालती, उस दिनकी बात भूल जाना—

मालतीने दरवाजेकी कुण्डियाँ पकड़कर खींची, दरवाजा आधा खुल गया।

सुरेन्द्रनाथका कण्ठ और भी काँप उठा—असमयमें कष्टमें पड़नेपर मुझको याद करना—

मालती बाहर निकल आई। साथ ही साथ उनकी आँखें भी आँसुओंसे भर गईं। पुकारा—मालती!

मालती वहीं खड़ी हो गई।

फिर पुकारा—मालती!

अबकी भीतर आकर वह किवाड़ोंके सहारे खड़ी हो गई।

आँखें पोंछकर सुरेन्द्रनाथने कहा—बचपनका शोक अभी तक नहीं भूला—

मालती हार छोड़कर वहीं बैठ गई, उसकी देह काँप रही थी।

सुरेन्द्रनाथ बालककी तरह रो पड़े—मालती, क्या लेकर संसारमें रहूँगा! तुम अगर मुझे छोड़ जाओगी तो मैं नहीं बचूँगा।

यों कहकर आपही नीचे फर्शपर लोट गये।

मालती पास आकर बैठी। अपनी गोदमें उनका सिर उठाकर रख लिया और उनके आँसू पोंछती हुई बोली—मैं नहीं जाऊँगी।

तब दोनों जने बहुत देरतक रोते रहे। मालतीने फिर उनकी आँखें पोंछ दीं। सुरेन्द्रनाथकी आँखें मुँदी ही थीं। उसी तरह पड़े-पड़े उन्होंने टूटे हुए स्वरमें कहा—उस दिन तुमने क्या कहा था, याद है?

"क्या कहा था?"

"चिर-दासी कहा था।"

"वही समझो।"

+ + + +

सुरेन्द्रने ऊँचे स्वरसे पुकारा—हरिचरन!

एकाएक हरिचरन धीमेसे कहा—जी हुजूर!
"बजरा अभी खोल दो।"
"अभी?"
"हाँ, अभी।"

६

जब तक बजरा दिखाई देता रहा, तब तक सदानन्द गाना बन्द करके उसीकी ओर देखता रहा। उसके बाद घरमें आकर सो रहा। आज उसका मन उदास हो गया था। नींद भी अच्छी तरह नहीं आई। प्रातःकाल सुमदाके पास आकर उसने कहा—मैं अगर यहीं आ खिया करूँ तो क्या ऐसा हो सकता है?

सुमदाने हँसते हुए मुखसे कहा—क्यों नहीं हो सकता!

सदानन्दने कहा—मैं यही सोच रहा हूँ। मेरे कोई रोटी बनानेवाला नहीं है। दोनों वक्त यहीं रोटी खा लिया करूँगा।

सुमदाने सोच-विचारकर कहा—अच्छा तो है।

सदानन्दने कहा—कुमारी मथुरामें उनकी कुछ जमीन है, वह मैंने ही ली है। दो-एक दिनमें यहाँ आकर मुझे सब देखना-सुनना होगा।

"सो तो निश्चय ही देखना-सुनना होगा नहीं तो और कौन देखेगा?"

"इसीसे सोचता हूँ कि अपनी चलनी ओटार यहीं रख दूँगा—नहीं तो चोर आदि चुरा ले जा सकता है।"

सुमदा भीतरकी बात नहीं समझी। बोली—इतने दिन तो किसीने चुराये नहीं।

"न चुराए हों, लेकिन अब तो चुरा ले जा सकते हैं।"

सुमदा चुप हो रही।

इसके दो-एक दिनके भीतर ही सदानन्दकी चलनी ओटार, दादाका मन्दिर, भाईका बोझ, नारियलका ढेर, गुड़का घाघ, सब एक-एक करके आकर सुमदाके घरमें स्थान पा गए।

यह देखकर सुमदाने कहा—सदानन्द, लोग क्या कहेंगे?

सदानन्दने हँसकर उत्तर दिया—चोर नहीं है, लोगोंकी नहीं है। मैं यहाँ खाता हूँ, यहीं रहता हूँ—मेरी चीज़-वस्तु भी यहीं रहेगी।

पाठशालामें मौहल्लेके दस आदमी दस तरहकी बातें करने लगे। किसीने कहा—हारानकी बीन सदानन्दपर जादू कर दिया है। किसीने कहा—सदानन्द अब पूरा पागल हो गया है। किसीने यह अफवाह फैला दी कि ललनाके साथ सदानन्दका ब्याह हो रहा है। सदानन्द यह सुनकर मन ही मन हँसा। जिसने उसके सामने यह बात उठाई, उसे उसने हँसकर एक रामप्रसादका गाना सुना दिया। किसीने दिल्लगी करके कहा—मैं कहूँगा तो दो बीघा जमीन तुम्हारे नाम लिख जाऊँगा। किसीने कुछ गम्भीर होकर कहा—पागल आदमी पागलपन करे तो इसके लिए तुम चिन्ता न करो। क्रमशः लोगोंका मुँह बन्द होने लगा। किन्तु जो लोग ईर्ष्याके मारे थे, वे मन ही मन जलने लगे। भजनाराम गांगुलीने यह हाल सुनकर सदानन्दको बुलाकर विशेष रूपसे उपदेश किया।

विशेष रूपसे उपदेश पाकर सदानन्दने कुण्ठित भावसे कहा—जो होनेका था, सो हो गया। अबकी बुआजीकी ससुरालसे लौट आकर पानकी कोठार आपके घरमें रख जाऊँगा।

गाँगुलीने बहुत ही प्रसन्न होकर कहा—सुनो जी सदानन्द, तुम्हारे पिता भी मुझे मानते और बड़ा आदर करते थे।

“ मैंने भी किसी प्रकार आपकी बेअदबी नहीं की। ”

“ तो फिर ऐसी बात क्यों कही ? ”

सदानन्दने कुछ अप्रतिभ भाव दिखाकर कहा—क्षमा कीजिएगा, मेरी बुद्धि सदा ठिकाने नहीं रहती।

गङ्गोपाध्याय और भी बिगड़कर बोले—तुम नष्ट होने जा रहे हो—बर्बाद हो रहे हो!

सदानन्दने मुस्कराकर कहा—आप लोग थोड़ी-सी चेष्टा करते तो शायद उबार होनेसे अब भी बच सकता था।

गाँगुलीने कहा—तुम मेरे सामनेसे चले जाओ!

“ जो आज्ञा ” कहकर सदानन्द बाहर आकर खूब हँस लिया और फिर ऊँचे स्वरसे रामप्रसादका एक गान शुरू कर दिया।

पासमें कहीं भैरव पत्तेका बोझा सिरपर लिये हाटको जा रहा था। उसने सदानन्दकी आँखोंमें हँसीकी चमक और मुँहमें गाना देखकर कहा—क्यों दादा, इतनी खुशी काहेकी है?

सदानन्दने हँसते-हँसते कहा—गोविन्दजी महाराजके यहाँ भोग भेजा था। खूब पेट भरकर खा आया हूँ।

उसने कहा—ठीक है।

तब आजकल पर्वका नाम क्या है—यह पूछकर, और एक बार हँसकर सदानन्द झुक किये हुए गानेका गाता हुआ मनके आनन्दसे चल दिया। कृष्णप्रिया भी हाटकी ओर चला गया।



कवियों एक बात कह गये हैं। कविने कहा है कि स्वर्ग और नरक मनमें ही है। तुलना करके देखनेमें अस्तित्व बहुत कम है। यह बात सम्पूर्ण सत्य न होनेपर भी इसके आंशिक सत्य होनेमें कोई सन्देह नहीं है। कारण, हारानचन्द्रके पार्थिव सुखकी जो अन्तिम सीमा है, उसका उन सुखोंसे कैसा उपभोग नहीं कर सकी। हारानचन्द्र दोनों वक्त मजेमें भोजन करते हैं, भैंसके ही बदले दो-चार आने मिले कर्जका नाम लेकर पा जाते हैं, उन्हें क्या करनेका फिकर नहीं है। आजकल बाजारके भीतर सिर ऊँचा किये आते-जाते हैं, किसी सालेका एक पैसा भी अब उनपर कर्ज नहीं है। नयी मोखडेने उनका पहलेका पद सम्मानके साथ फिर लौटा दिया है। और क्या चाहिए! और जो कुछ बाकी है, उसके लिए हारानचन्द्र अपने मनमें सोचते हैं कि सदानन्द और कुछ पागल हो जाय तब उसे भी पूरा कर लेंगे। तब मदनकी दुकान आप ही खरीद लेंगे और उसके बाद रघुनाथकी बालमसीके अरमान पूरे कर देंगे। उसका एक मकान खरीदकर उसके सामने बैठकर कहेंगे—छोटे आदमीकी बात! मुझ सिरकी जानती है! देख समझती है! अरे सदके साथ और लीके पारिवारको देखना तो जानते नहीं, देखो क्या हस्ती है!—और यह भगवान भण्डी—बड़ा जमींदार बना है। उसके घरके सामने ही मदनका अड्डा न जमाऊँ तो मेरा नाम हारानचन्द्र नहीं।

इन दिनों हारानचन्द्र मजेसे कोई-न-कोई गाना गुनगुनाते हुए बहुनगरा गाँवमें घूमते-फिरते रहते हैं।

लेकिन शुभदा! उसकी भी क्या ऐसी ही भावना है! भगवान जानते हैं, स्वामीका सुख उसने एक दिन भी नहीं पाया। इसमें कम उसे याद नहीं।

उसी स्वामीको अन्न-भोजन मिला देनेमें उसे कितना आनन्द, कितनी तृप्ति मिलती है, इसकी ठीक ठीक धारणा वह आप ही नहीं कर पाती। आनन्दसे उसकी आँखोंके कोनोंमें आँसू भर आते हैं। किन्तु इसे कौन देखेगा? देखने वाला एक व्यक्ति था, समझनेवाला एक आदमी था; लेकिन वह पहले ही चला गया। छलना नहीं था होता तो शुभदा इसी सुखमें सांसारिक कहानी समाप्त कर दे सकती किन्तु उधर छलना दिन दिन बड़ी होती जा रही है। उसका कैसे क्या उपाय होगा? जो मर गया वह तो बच गया। किन्तु हाराणके मनमें क्या है, यह शुभदा किसी तरह समझ नहीं पाती। आजकल उसकी चिकित्साकी सहूलियत और सब तरह सुयोग भी है, बराबर इलाज भी होता है मगर उसका कुछ फल होता नहीं देख पड़ता। शुभदा यह बात सोचकर माथा पीटती है, ललनाको याद करके आकुल होकर आप ही आप अकेलेमें रोती है और ललना कहाँ गई है वहाँ उसीके पास जानेकी कामना करती है। फिर मशीनसी चलती है, भोजन बनाती है, सबको खिलाती-पिलाती है। इसी तरह दिन बीतते चले जाते हैं।

एक दिन दोपहरको भोजन करने बैठकर हारानचन्द्रने शुभदाके मुखकी ओर देखकर कहा—छलना सयानी हो गई है।

शुभदाने मलिन मुखसे कहा—हाँ।

"अब ब्याह किये बिना और काम नहीं चलेगा—देखनेमें अच्छा भी न लगता।"

शुभदाने कहा—मा दुर्गा ही जानें।

हारानचन्द्र जरा हँसे। बोले—मा दुर्गा तो ब्याह न कर जायेंगी।

शुभदा चुप रही।

हारानचन्द्रने कहा—हरमोहन बाबूके लड़के शारदाचरणके साथ भी तो ब्याह हो सकता है?

शुभदा अच्छी तरह समझ न पाई। बोली—शारदाके साथ?

हारानचन्द्रने कहा—हाँ।

"लेकिन क्या यह संभव है?"

"असंभव ही क्यों है?"

"क्या जाने!"

यह बात शुभदाने सम्पूर्ण हताश भावसे ही कही।

पागल सदानन्द इस बातको समझकर, छिपाकर जरा हँस दिया। फिर कहा—यह बात मैंने एक दिन परिहासच्छलसे कही थी। वह तो राजी हैं।

शुभदाके मुखपर आनन्दके चिह्न प्रकट हुए; किन्तु वैसे ही तुरन्त गायब हो गये। शुभदाने कहा—लेकिन उनके पिता, वह क्या राजी होंगे?

सदानन्दने कहा—क्यों न राजी होंगे?

क्यों न राजी होंगे यह शुभदा समझती थी। लड़केकी इच्छा रहने पर भी, उनके बापकी इच्छा क्यों न होगी, यह भी वह जानती थी; किन्तु खोलकर कह नहीं सकी। एक बार उसकी इच्छा हुई कि पूछे कौन उनके पिताको राजी करने जायगा? लेकिन यह भी उसने नहीं कहा। केवल चुपचाप कातर दृष्टिसे उनके मुखकी ओर ताकती रह गई।

पागल सदानन्दने यह मौन भाषा भी समझी। बोला उनके बापको राजी करनेके लिए हम लोगोंको ही चेष्टा करनी होगी। कारण, ब्याह तो करना ही होगा।

शुभदाने डरते डरते, आशा-निराशाके बीच, अस्फुट स्वरमें कहा—वह राजी होंगे क्या?

"निश्चय होंगे।"

"कैसे जाना?"

पागल सदानन्द फिर जरा हँसकर बोला—मैं जानता हूँ। आप चिन्ता न करिये; मैं निश्चय राजी कर लूँगा।

और सभी हरमोहनको किस तरह राजी करना होगा या किस तरह राजी किया जा सकता है, यह सदानन्द विशेष रूपसे जानता था और राजी जरूर होंगे, यह भी जानता था।

लेकिन शुभदासे रहा नहीं गया। लौटकर भीतर घुस अँधेरेमें सिर नवाई। किन्तु दूसरा कपड़ा हाथमें लेकर अन्धकारपूर्ण उसमें एक बार सा आँसू। मुँह भी मिला इतना। अचानक भागसे बाहर आकर बोली—जरा उठो सदानन्द, धूप चढ़कर लगी है।

दूसरे कमरेमें जाकर दूसरी कड़ाहीमें हाथ लगाकर शुभदाने आहा और रो

लिया। सावधान होकर और भी दो-चार बड़े बड़े आँसू धरती पर गिरानेके बाद आँखें पोंछकर दूध कटोरेमें ढालने लगी।

शुभदा रोई अवश्य; लेकिन ये आँसू कलेजा चीरकर निकलनेवाले रक्तके बूँद नहीं थे बल्कि अकस्मात् सम्पन्न होनेमें जो आनन्द होता है, उसके आँसू थे। इनमें सफलताके हर्षका एक बूँद था, स्वामीकी वेदनाका एक बूँद पानी भी शायद था।

भोजन समाप्त करके सदानन्द मैदानकी ओर चला। वहाँ उसके खेत हैं, किसान काम करते हैं, लड़के-बच्चे चरते रहते हैं। सदानन्द खेतकी मेंड़पर कुछ देर घूमता रहा। फिर एक पीपलकी छायामें बैठकर दस-पाँच बार भगवानका नाम लिया, दो-चार चिलम तमाखू फूँकी। इसके बाद वहाँसे उठकर हरमोहन बाबूके बैठकखानेमें आकर उपस्थित हुआ।

वृद्ध हरमोहन उस समय खाकर उठकर पान चबा रहे थे। सामने चिलम भरी रखी थी—उसका तवा अभी तक खूब गरम नहीं हुआ था—सिर्फ थोड़ा थोड़ा धुआँ निकल रहा था।

सदानन्दको देखकर वृद्ध कह उठे—क्यों जी, बहुत दिनोंसे तुमको नहीं देखा—कहाँ थे?

सदानन्द बोला—इधर काशीमें बहुत दिन रहा।

हरमोहनने कहा—हाँ, यह तो सुना था। तुम्हारी बुआ काशीमें स्वर्गवासिनी हुई—यह भी सुना है। आओ बैठो, बैठो।

सदानन्द खूब सम्मानके भावसे वृद्धके पास ही बैठ गया। सदानन्द किसी मतलबको कहनेके लिए कुछ भूमिका नहीं बाँधता, मिथ्या आडम्बर उसे अच्छा नहीं लगता। बैठते ही कह बैठा—आपके पास विवाहका प्रस्ताव लेकर आया हूँ।

हरमोहनने हँसकर कहा—किसके विवाहका?

सदानन्द—आपके पुत्रका।

अबकी वृद्ध गम्भीर हो गये। गाँवके इस व्यवहारकी बातचीतके समय हँसी दिल्लगीको बहुत दूर छोड़ आये हैं। हरमोहनकी नजरमें उनके पुत्रके ब्याहकी बातचीत एक बहुत बड़ा मामला था, एक बहुत भारी कामकी बात थी। अनायास इस विषयमें उन्हें बहुत दिमाग लड़ाना पड़ा है—अनेक तरहके उठान पड़े हैं। उनकी समझमें अगर ऐसा कठिन लेन-देनको तय करनेमें—बहस करनेमें पूरे

तौरसे बुद्धि न लड़ाई जा सके तो किसी तरह एक न्यायोचित निर्णय तक नहीं पहुँचा जा सकता। उनकी यह धारणा ही न थी कि उम्दा बालोंवाले दाढ़ी-मूछ-सफाचट युवा व्यक्तिके सिवा और कोई समझदार आदमी न्यायपूर्ण प्रस्ताव अपने मुखसे निकाल सकता है। इस समय एक नवयुवकके मुखसे ऐसे गम्भीर विषयकी अवतारणा सुनकर वृद्ध हरमोहन कुछ विक्षुब्ध हो उठे। कुछ दिन पहलेसे ही वह सुन पा रहे थे कि सदानन्दका मस्तिष्क और अधिक विकृत हो गया है। इस समय उसके पागलपनका ऐसा प्रबल प्रमाण पाकर वे बहुत ही सच्चे मनके साथ और पूरी तौरसे गम्भीर बनकर बोले—किसका ब्याह? शारदाका?

"जी हाँ।"

वृद्ध अनमनस्क भावसे भीतरकी ओर उँगलीसे इशारा करके बोले—जान पड़ता है, उधर शारदा है, जाओ।

वृद्धकी आकृति-प्रकृति देखकर इस कथनका मतलब सदानन्दने समझ लिया। जरा हँसकर बोला—शारदासे मेरा काम नहीं है; आपहीके पास आया हूँ।

वृद्धने पहलेके ही ढंगसे पूछा—मेरे पास।

"जी हाँ।"

"क्यों?"

अभी आपसे कहा न कि आपके पुत्रका सम्बन्ध करने आया हूँ। शारदाका क्या ब्याह करिएगा?"

"करूँगा, लेकिन इससे तुम्हें क्या मतलब है? तुम्हें क्या प्रयोजन?"

"क्या बिना प्रयोजनके ही आया हूँ?"

"तुम्हारा प्रयोजन? मुझसे?"

"जी हाँ।"

"लेकिन तुम्हारे साथ ये सब बातें नहीं हो सकतीं।"

सदानन्दने समझा कि दुनियाके इस तरहके आदमियोंके आगे मुँहपर तनिक भी हँसीका चिह्न रहे तो बातचीत नहीं चल सकती। मुँहको नहीं होलीकी तरह बनाये बिना मेल-जोलकी, लेन-देनकी बात तनिक भी समझी जा सकती है, इनके इस सम्प्रदायके मनुष्य धारणा ही नहीं कर सकते।

तब सदानन्द चेष्टा करके जितना हो सका उतना गम्भीर बनकर बोला—

नष्ट हो सकती है। मैं जब बालक था तभी मेरे पिताजीका स्वर्गवास हो गया था। तबसे मैं ही उनकी सब जायदाद और मामलोंको देखता-सुनता-सा रहा हूँ। सांसारिक बातचीत हम लोगोंको ही करनी पड़ती है। मैं जानता हूँ कि व्याहका मामला करने आनेपर लेने-देनेकी बात तय करनी होती है। मैं आया करता हूँ, इस मामलेको जितना आप समझेंगे उतना ही मैं समझूँगा।

इस हरमोहनको यही पहली बार भान हुआ कि यह ठीक पागलकी-सी बात नहीं कही गई। थोड़ा सोचकर बोले — अवश्य। लेने-देनेका कुछ फैसला तो करना ही चाहिए।

सदानन्द हँसीको दबा नहीं सका। इसीसे फिर जरा हँस पड़ा। फिर बोला — मैं तो पहले ही आपसे निवेदन कर चुका हूँ कि यह सब बातचीत मेरे साथ करनेसे विशेष क्षति न होगी। लेने-देनेकी बात तय करनेके लिए ही आपके सामने उपस्थित हुआ हूँ।

हरमोहन कुछ नरम पड़े। बोले — किसकी लड़की है? कहाँ है?

"इसी गाँवमें है, हारानचन्द्र मुखोपाध्यायकी दूसरी कन्या है।"

"हारानकी?"

"जी हाँ।"

"वह क्या देखा?"

"आप तो चाहेंगे नहीं।"

बूढ़ेने कुछ सोचकर बाद कहा — लड़की देखने-सुननेमें कैसी है?"

"आपने उसको देखा है; लेकिन शायद आपको याद नहीं है। फिर, मेरी समझमें लड़की देखने-सुननेमें बुरी नहीं है। आपके पुत्रने उसको देखा है — विवाह करनेको अनिच्छुक भी नहीं है।"

अबकी वृद्ध जरा हँसे। बोले — तब तो ठीक ही है। और हमारे गृहस्थके घरमें लोगकी खूबसूरतीका भी विशेष प्रयोजन नहीं है। देखने-सुननेमें नितान्त बुरी न हो और घरका काम-काज कर सके, इतना ही बस चाहिए।

"यह सब वह कर सकती।"

"लेकिन हारान क्या दे सकता? रुपये-पैसेकी विशेष उनकी हालत तो अब अच्छी नहीं है।"

" ना, हालत अच्छी नहीं है। इसीलिए समाज रखकर आप जो आज्ञा करेंगे, वही करूँगे।"

सब जरा मुश्किलमें पड़ गये। मन ही मन सोचा कि आर्थिक दशाका उल्लेख न करना ही अच्छा होता। किन्तु दुनियाके मामलोंमें तीक्ष्ण बुद्धि रखनेवाले चतुर हरमोहनने अपनी इस भूलको चट सुधारते हुए कहा—मगर जानते हो भैया, लड़कीके ब्याहमें कुछ खर्च तो होता ही है।

" अवश्य।"

तब हरमोहन अभ्यासके मुताबिक होठोंकी क्षीण हँसीको विदा करके पत्थरके आदमी बनकर बोले—एक हजार नकद रुपया-मुहरसे कम लेकर मैं [illegible] विवाह किसी तरह नहीं कर सकता।

सदानन्दने हँसकर कहा—यही दिया जायगा।

सदानन्दकी बात सुनकर सब तो अपने ही ऊपर खीझ उठे। उन्होंने मन ही मन अपनेको एक बहुत बड़ा गधा कहा। डेढ़ हजार रुपये क्यों नहीं कहे? यह अफसोस उनके हृदयमें सूईकी तरह गड़ने लगा। खैर, जब बात मुँहसे निकल गई तब वह फिर लौटाई नहीं जा सकती। जो हो, अब किसी कदर भूलकी या उसकी सुधार करनेके उद्देश्यसे बोले—लड़कीको गहने भी अवश्य देने होंगे।

" बेशक देने होंगे।"

" दान-सामग्री भी वैसी होनी चाहिए होगी ही।"

" जी हाँ।"

" तो फिर मैं भी राजी हूँ।"

" तो एक दिन ठीक कर दीजिए।"

सबने जरा चुप रहकर कहा—यह विवाह-सम्बन्ध अवश्य अपने आपसमें हो रहा है, और दामनको मैं कुछ गैर नहीं समझता हूँ, तो भी सब नियमोंका पालन करके चलना होगा।"

सदानन्दने कुछ शंकित होकर कहा—नियम और क्या है?

" नियम यही कि आपसकी बात होनेपर भी उसकी एक लिखा-पढ़ी हो जानी चाहिए।"

"अच्छी बात है। लिखा-पढ़ी कर लीजिए।"

"लेकिन लिखा-पढ़ी किसके साथ होगी?"

"मेरे ही साथ कर लीजिए।"

"कब?"

सदानन्दने क्षणभर सोचकर कहा—एक महीने बाद।

हरमोहन राजी हो गये।

तब सदानन्दने कहा—मेरा एक अनुरोध है।

"क्या भैया?"

"यह लेन-देनेकी बात कोई तीसरा आदमी न सुन पाये।"

"क्यों?"

"एक कारण है।"

हरमोहन चालाक आदमी हैं। सदानन्दके मनका भाव समझकर बोले—चुपचाप दान करना चाहते हो?

सदानन्द चुप हो रहा। उसका मुख देखकर, उस निरुपाय दशा देखकर उस घड़ी हरमोहनको भी लज्जा मालूम पड़ने लगी। किन्तु हम पहले ही कह चुके हैं कि वह पूरे मतलबी चीज थे, उन्होंने इस भावको अधिक देर तक मनमें न टिकने दिया। हल्की हँसी हँसकर बोले—भैया, हम लोग बूढ़े हो चुके हैं, इसलिए हमारी आँखोंमें उतना शौक या मनमें उतना कुतूहल भी नहीं रहा। नहीं तो हारानकी हालत मैं विशेष रूपसे ही जानता हूँ। खैर, तुम जब हारानको कानोंकान खबर नहीं होने देना चाहते हो तब मैं भी चुपचाप उस [illegible] करूँगा। इसके लिए तुम कुछ चिन्ता न करो।

सदानन्द प्रफुल्ल मुखसे नमस्कार करके वहाँसे चल दिया।

७

रासमणिने सुना, हारान बाबूने सुना, शुभदाने भी सुना कि शारदाचरणके साथ ललनाका ब्याह हो रहा है। यह ब्याह सदानन्दने कराया है। सुनकर रासमणिने राय जाहिर की कि सदानन्द पूर्वजन्ममें शुभदाका पुत्र था। सदानन्दके कानमें भी यह बात पहुँच गई थी। उसने कुछ उत्तर न देकर इसे स्वीकार कर लिया, कोई प्रतिवाद नहीं किया।

अनेक झंझटोंके मारे आनन्द यह अपनी पुत्रीकी यादगारको देखने-भालने नहीं जा सका था। अब समय पाकर उसने यह बात—जानेकी अपनी इच्छा प्रमदासे कही। प्रमदाने सहमति प्रकट की। तब पीरगंज-पोखरी लौटकर कुछ दिनोंके लिए श्रीमान् सदानन्दने विदेशके लिए यात्रा की। प्रमदाका परिवार अब उतना परिवार हो गया है, अतएव प्रमदाके वश्य तब प्रबन्ध कर जाना यह नहीं सूझा। साथ ही व्याहकी ओर तब तैयारी कर रखनेके लिए प्रमदासे विदेश जाने कह गया। वहाँ जाकर सदानन्दने मृत पुत्रीकी सारी जमीन-जायदाद अच्छी तरह देख-सुन ली। इसके बाद एक आदमीको वह सब सौंपकर अर्थात् उसके हाथ सब देकर पन्द्रह दिनके भीतर ही वह हरदयपुर लौट आया। हरमोहनके साथ व्याहमें देने-लेनेकी, लिखा-पढ़ी की, गहने गढ़ाये, तब चीज-वस्तु मँगाई, व्याहका दिन ठीक किया। इसके बाद समय निकालकर एक दिन शारदाचरणसे मुलाकात करने गया। इतने दिनतक एकान्तमें शारदाचरणसे दो बातें करनेका समय या अवकाश नहीं मिल पाया था। आज बहुत दिनोंके बाद दोनोंने आपसमें कुछ बातचीत करना चाही, इसीसे हाथमें हाथ डाले हुए दोनों गंगाके किनारे एक जगहपर आकर बैठे।

बैठकर शारदाचरणने कहा—सदानन्द, तुम्हें बचपनकी बातें याद हैं!

“ कुछ कुछ याद क्यों नहीं है।”

“ याद आती है कि जब मैं एक आदमीको बहुत प्यार करता था, जब केवल उसी बातको दिन-रात सोचा करता था, तुम्हारे आगे कितनी आशा, कितनी कल्पना, न जाने कितनी और कौन-कौन बातें करता-सुनता था, स्कूलमें कितना रोता था और तुम हँसकर उड़ा देते थे, या व्यंग्य-विद्रूप करते और बनाते थे— वे सब बातें क्या कभी तुम्हें याद आती हैं सदानन्द ?”

“ याद क्यों नहीं आती ! यह तो अभी कलकी बात है। जान पड़ता है, सात-आठ मास अधिक न हुए होंगे—लेकिन उन बातोंपर व्यंग-विद्रूप तो मैंने कभी नहीं किया।”

“ मुझे तो जान पड़ता था, जैसे तुम विद्रूप करते थे। और यह यदि हो तो, इसके बाद जिस दिन उसने मेरी सब आशा धूलमें मिला दी— एकाएक हम दोनों ही देखना-भालना बन्द करके सदाके लिए विदा हो गये,

उस दिन कितनी रात गये तक तुम्हारे पास बैठकर मैं रोया था, यह तुमको याद है भाई ?"

"याद है।"

सदानन्द कुछ अन्यमनस्क हो गया। लेकिन उधर लक्ष्य न करके थोड़ी दूर पर उँगलीसे दिखलाकर ताराचरणने कहा—उस जगह वह मरी है।

सदानन्दने यह बात जैसे सुनी ही नहीं। गंगामें एक नाव पाल उड़ाये ठेलती चली आ रही थी—उसीको वह ताकता रहा। ताराचरणने फिर कहा—अन्ना इसी जगह डूबकर मर गई।

अबकी सदानन्दने मुँह घुमाकर कहा—किस जगह ?

"इस जगह।"

"कैसे जाना ?"

"यहीं उसकी पहली धोती पाई गई थी।"

सदानन्द उठकर खड़ा हो गया और बोला—तो चलो, वह धोती [illegible] आवें।

ताराचरण चुप रहा। बोला—धोती क्या अभी तक वहीं पड़ी है ?

"तो चलो, वह जगह देख आवें।"

तब दोनों उस जगह जाकर खड़े हुए। सदानन्दने जल लेकर मुँह धोया, आँखें धोईं। इसके बाद फिर यथास्थान आकर बैठ गया।

"सदानन्द, मुझे बड़ा पछतावा हो रहा है।"

"क्यों ?"

"कभी कभी जान पड़ता है कि मैंने ही उसको मार डाला।"

"क्यों ?"

"भगवान् जानते हैं कि उसकी आयु समाप्त हुई थी कि नहीं, किन्तु मुझे जान पड़ता है कि मैं ब्याह कर लेता तो शायद वह बच भी सकती थी।"

सदानन्दने एक लम्बी साँस ली। बोला—जो मरा वह अवश्य ही मरता। तुम क्या करोगे ?

"यह मैं जानता हूँ। तो भी अगर मैं उसकी बात मान लेता, अगर ब्याह कर लेता—"

सदानन्द हँसा। बोला—शांतिसे जो निबाह किये जाते।

शारदाचरणने मुँह खोला। बोला—हाँ, शांति तो चाही।

"तो फिर तुम और क्या कर सकते थे?"

शारदाचरणकी आँखोंमें आँसू आ गये। बोला—अब क्या कर सकता हूँ लेकिन तब इतना पछतावा न होता।

सदानन्दने दूसरी ओर देखते हुए कहा—धीरे धीरे सब दूर हो जायगा।

शारदाचरणने कहा—भाई, अगर मैं उसका आखिरी कहा मान लेता—उसके अन्तिम अनुरोधकी रक्षा कर सकता!

"क्या अनुरोध किया था?"

"उसने कहा था कि एक गरीबकी जाति बचानेको कमलासे ब्याह कर लो।"

सदानन्दने उसके मुखकी ओर ताककर कहा—तो क्या कमलासे ब्याह न करोगे?

"करूँगा, लेकिन यह क्या उसके अनुरोधकी रक्षा करना हुआ?"

"क्यों नहीं हुआ?"

"एक तरहसे हुआ जरूर, लेकिन अच्छा सदानन्द, बापूको तुमने कैसे राजी कर लिया?"

सदानन्द मुसकाया। बोला—मैंने कहा कि यह ब्याह करनेकी तुम्हारी इच्छा है।

"सिर्फ इतना ही?"

"और क्या?"

"मैं क्या बापूको जानता नहीं?"

सदानन्द फिर हँसा। बोला—तो फिर पूछते क्यों हो?

"मैं पूछता हूँ कि कितने रुपये देने पड़े?

"यह जानकर तुमको कोई काम नहीं।"

"सदानन्द, यह पापका धन जो है!"

"मैं आशीर्वाद करूँगा कि तुम्हारा जीवन सदा सुखसे कटे।"

"समय होनेपर मैं तुमको ये रुपये फेर दूँगा।"

"अच्छा, तुम देखो," कहकर सदानन्द उठकर वहीं आया जहाँ ठकुरानी बैठी पड़ी मिली थी। वह उस स्थानकी मिट्टी उठाने लगा।

तारादासने विस्मित होकर कहा—यह क्या करते हो? अच्छा भैया मिट्टी क्यों उठा रहे हो?

सदानन्द खूब जोरसे हँस उठा। बोला—पागलपन कर रहा हूँ।

वस्तुतः तारादासने उसके इस कथनके साथ उसके कामका विशेष भेद नहीं देख पाया। तो भी बोला—पागलपन कर रहे हो, यह तो मैंने नहीं कहा।

सदानन्दने कहा—तुम क्यों कहोगे, मैं कहता हूँ।

"ना ना, सच कहो, मिट्टी लेकर क्या करोगे?"

सदानन्द—मैं आजकल शिव-पूजा करता हूँ। घरमें गंगामट्टी नहीं है, इसीलिये लिये जाता हूँ।

तारादास खड़ा खड़ा उसका मिट्टी निकालना देखता रहा।

सदानन्दने मिट्टी निकालकर उसका बड़ा-सा ढेला बनाया, फिर उस गंगाके भीतर फेंककर हाथ-पैर धोकर तारादासके पास आ खड़ा हुआ।

"चलो तारादा, घर चलें।"

"तुमने यह सब क्या किया?"

"जो किया था तो तुमने आँखोंसे देख ही लिया।"

"कहाँ, शिव-मूर्तिके लिए तो मिट्टी नहीं ली?"

"ना, अब शिव-पूजा नहीं करूँगा।"

"क्यों?"

"यह फिर किसी दिन बतलाऊँगा।"

इसके बाद दोनों जने गाँवके भीतर घुसकर अलग अलग अपने घर चले गये। आकर सदानन्दने स्नान करनेके लिए अपनी कोठरीका दरवाजा बन्द कर लिया।

रात्रिको भोजन करनेके लिए छन्ना और गुमाश्ते बारी-बारीसे बुलाने आए, लेकिन सदानन्दने द्वार नहीं खोला। भीतरसे कहा—आज गर्मी शरीर बहुत लगता है।

छन्ना दरवाजेके लिए आई, लेकिन उस समय सदानन्द सो गया था। कई बार बार-बार पुकारकर वह लौट गई।

दूसरे दिन सवेरा होनेपर वह फिर उठा। मैदानमें खेत पर गया। भोजन करने आया। हँसकर खाना खाने लगा। नित्यकर्म जो रोज करता था वह सब करने लगा। किन्तु कोई यह नहीं समझ पाया कि वह प्रतिदिन बदलता जा रहा है। जब जैसा था, आज ठीक वैसा नहीं है। क्रमशः आनन्दकी क्षेमकी तिथि—ललनाके ब्याहका दिन—आ गई। आज सभीके चेहरे पर आनन्दकी झलक है सभीके मनमें उत्साह है। महानन्दको दम लेनेका अवकाश नहीं है। हारान मुखर्जीकी चीख-पुकारकी हद नहीं है। बुआजीके आँसू बहकर आते हैं। घरमें जो आता है, उसीको लेकर बताती हैं कि ऐसे सुखके दिन भी ललनाके लिए उनका मन हाय-हाय कर रहा है, उनके मनमें रत्ती भर भी सुख नहीं है। जान पड़ता है, उनमेंसे अधिकांश व्यक्ति उनके साथ इस व्यथाका अनुभव कर रहे हैं—ललनाका अभाव उन्हें खटक रहा है। केवल शुभदा आज बड़ी शान्त, बहुत धीर है।

क्रमशः सन्ध्या हुई। बहुत बाजे बजे। बहुत लोग जमा हुए। इसके बाद शुभ लग्न शुभ घड़ीमें सारदाचरणके साथ ललनामयीका ब्याह हो गया।

आज गाँव भरमें कृपण हरमोहनकी प्रशंसाकी धूम मची है। उनके शत्रु-ओंने भी अपने मनमें यह स्वीकार किया कि बेशक इसका मन अत्यन्त उदार है। मुँहके ऊपर कोई उनका गुणगान करता है तो वह हरमोहन बहुत ही कुण्ठित मालूम पड़ते हैं — बताइए क्या करूँ, एक ही तो लड़का है—उसकी यहाँ ब्याह करनेकी इच्छा थी मैं नहीं क्यों करता ! फिर गाँवमें हमारा ही घर उनकी बराबरीका कुलीन है। फिर अपने पड़ोसीको कष्ट देखना भी तो दोष है।

सारदाचरण यह बात सुनकर आड़में भौंह सिकोड़ता था।

८

ब्याहके बड़े काम थे—बड़े काम सब काम निपटे। अब आराम करके दम लेना अच्छा लगता है। लेकिन दो-चार दिन बाद यह आराम वैसे उपभोग नहीं किया जा सकता। बिल्कुल अलग आलसी निकम्मोंकी तरह बैठे रहनेमें भी तबियत ऊब जाती है। ललनामयीका ब्याह करके, छिपा छिपाकर हरमोहनका अच्छी रकम सूद देकर, हारानके अपराधमें पकड़े गये आफिसके चुराए धनकी

तरह, बिछौनेमें पड़कर मनके आनन्दसे तकिया छातीमें दबाकर इधर-उधर करवट बदलकर सदानन्दने दो-चार दिन बिना किसी झंझटके बिता दिये। इसके बाद उसे जान पड़ने लगा, बिछौना जैसे कुछ गरम है, तकिये जैसे कुछ कड़े हो गये हैं, कोठरीके भीतर अन्धकार जैसे कुछ अधिक आ गया है। सदानन्द उठकर बाहर आकर खड़ा हुआ। उस समय लगभग सन्ध्या हो गई थी। दिनभर आसमानसे बूँदें गिरती रही थीं, और बूँदियाना अभी तक बन्द नहीं हुआ था। काले काले बादल छोटे-मोटे हवाके झोंकोंसे बीच-बीचमें कुछ इधर-उधर हट अवश्य जाते थे किन्तु पानी बरसाना बन्द न करते थे। बन्द भी नहीं करेंगे। कमसे कम सदानन्दने अपने मनमें यही समझ लिया। इसके बाद सिरपर छाता लगाकर बाहर निकल पड़ा। बहुत देर तक इधर उधर राहमें घूम-फिरकर, कपड़े भिगोकर, पैरोंमें कीचड़ भरे हुए हारानचन्द्रके घरके भीतर आकर खड़ा हुआ। जान पड़ता है, शुभदा रसोईघरमें थी। सदानन्द उस ओर नहीं गया। बुआजी शायद मोहल्लेका चक्कर लगाने गई थीं। उनका भी पता उसने नहीं लगाया। पैर धोकर इधर-उधर देखकर जिस कोठेमें माधवचन्द्र सोता था, वहाँ आकर उपस्थित हुआ।

बहुत दिनोंसे माधवचन्द्रको हमने नहीं देखा। आज उसका कुछ हाल कहेंगे। ललना जबसे गई तभीसे धीरे धीरे वह समझदार हो गया है। बड़े मनुष्यों और समझदारकी तरह सभी बातोंमें सोच-समझकर वह अपनी राय जाहिर करता है। ऐसी-वैसी चीज खानेको नहीं माँगता। किसी बातके लिए मचलता नहीं। अक्सर वह कुछ बोलता ही नहीं। चुपचाप दार्शनिककी तरह तकिया दबाकर उसीके सहारे चुपचाप बैठा रहता है। कोई उसके पास आवे चाहे न आवे, वह उधर ध्यान ही नहीं देता। आज भी वह इसी तरह बैठा था। सदानन्द आकर उसके पास खड़ा हुआ। उसकी ओर घूमकर माधवने देखा। बोला—सदा दादा, अब तुम मेरे पास आते क्यों नहीं?

" मुझे कितना काम था भाई।"

"सब हो गया?"

"हाँ।"

"छोटी दीदी कब लौटकर आयेंगी?"

यमुना आकर उसे ले जायगी, लेकिन क्या जानें कुछ और ही तरहकी बात कही है। उसके शरीरमें अब तनिक-सी भी शक्ति नहीं है, अब वह कहाँ इतनी दूर कहाँ जा सकता! सोच-सोचकर बहुत रात बीतने पर उसने निश्चय किया कि उसकी दीदी कभी झूठ नहीं बोलेगी—यथा-समय निश्चय ही आयगी। माधवचन्द्र तब बहुत-कुछ शान्त मनसे सो गया।

९

और भी कुछ दिन बीत गये। यमुना ससुरालसे वापस घर लौट आई। मोहल्लेकी औरतें और एक बार नये सिरेसे उसको और दामादको देख गये। कितनी ही हँसी-दिल्लगी और ठट्ठा हुआ। हरमोहन आप यहाँ आकर सबको मधुर सम्बोधनोंसे निहाल करके, यथोचित नमस्कार ग्रहण करके घर लौट गये। हारानचन्द्रने कमरेमें खाट पड़ी हुई पाकर उसपरसे फलूनपाड़ाकी हर एक दूकानमें एक बार बैठकर सबको मुग्ध कर लिया। इसी तरहकी अनेक घटनाएँ घटित हुईं।

आज माधवचन्द्रकी पीड़ा बहुत बढ़ गई है। बिछौनेपर पड़ा छटपटा रहा है और उसके अगल-बगल, सिरहाने, पैरोंके पास हुआ यथासम्भव, कृष्णा महतारिन यमुना वगैरह बैठी हैं। सुभद्रा यहाँ नहीं है। वह रसोईघरमें बैठी कुछ खाना बनाती है और कुछ रोती है। ज्ञानचन्द्र डाक्टरको बुलाने गया है और हारानचन्द्र 'अभी आता हूँ' कहकर लगभग तीन घण्टे हुए, बाहर निकल गये हैं और अभी तक लौट नहीं पाये। सब लोग आमने-सामने बैठे हैं। कृष्णा महतारिन माधवके शरीरपर हाथ फेर रही है और डाक्टरकी राह देखती हुई मन ही मन समयका अन्दाज लगा रही है।

क्रमशः सन्ध्या हुई। उसके थोड़ी देर बाद ही डाक्टर आ पहुँचे। यह आज छः सात दिनसे नित्य आते हैं, नित्य रोगीको देखते हैं। पीड़ा किसी तरह कम नहीं होती, बल्कि और बढ़ गई है—यह वह जानते थे। रोगी बचेगा नहीं, यह भी वह समझ गये थे। आनेकी इच्छा भी नहीं थी; किन्तु ज्ञानचन्द्रके पीछे पड़नेसे आनेको लाचार हुए।

भीतर आकर डाक्टर लोग जो देखते हैं, वह सब देखनेके बाद बाहर

आकर सदानन्दको हुसकार कर देते हैं, अतः उससे बोले—देखो सदानन्द बाबू, आप खूब सावधान रहना। जान पड़ता है, लड़का आज रातको नहीं बचेगा।

सदानन्द भी यह जानता था।

बहुत रात बीते हारानचन्द्र और आये। चोरकी तरह कोठरीके बाहर खड़े रहकर जहाँतक सम्भव था, भीतरका हाल जान लिया। इसके बाद दरवाजा खोलकर फिर भीतर जाकर बोले—अब कैसा है?

किसीने जवाब नहीं दिया। केवल घुमरा बाहर निकल आई। लालटेनकी पासमें सामने रखकर पास बैठ गये।

हारानचन्द्रने पूछा—माधुकी तबियत अब कैसी है?

"जान पड़ता है, अच्छी नहीं है।"

"अच्छी नहीं है!" जरा थमकर हारानचन्द्रने कहा—"मेरा शरीर भी ठीक नहीं है।"

क्या सोचकर उन्होंने यह बात कही, क्या सोचकर उन्होंने अपने अस्वस्थ होनेकी बातका उल्लेख किया, यह हम नहीं कह सकते, और इसमें सच था झूठ मिला था, यह भी हम नहीं जानते। लेकिन उनकी यह बात घुमराके कानोंमें नहीं गई। हारानचन्द्रने भी मन ही मन बहुत बुरा माना। स्त्रीके आगे अपनी शारीरिक अस्वस्थताकी बात कहकर उसका एक स्नेहमय उत्तर न पाना, बीमार भानजेका ध्यान न करना उन्हें ऐसा असभ्यतासूचक जान पड़ा कि हारानचन्द्रने अपनेको यथेष्ट अपमानित समझा। वह नशा करते आये थे, इसीलिए यह साधारण अपमानका अंकुर दो-चार पलोंमें ही मस्तिष्कके भीतर खूब धारा-प्रवाहपूर्ण फैलकर छा गया। हारानचन्द्रने खीझकर मारे चाभी झमकनेमें ठेस दी और कहा—अच्छा तो क्या मर जाऊँ!

हारानचन्द्र वहींसे उठकर हाथ-मुँह धोकर कुल्ला करके अपनी कोठरीमें चले गए और अपने बिछौनेपर मजेसे पैर पसार कर सो गए। जान पड़ता है, उन्होंने मनमें यह ठीक कर लिया कि वह भी यथेष्ट अस्वस्थ हैं।

इधर घुमरा हाथ बाहर माधवके पास आ बैठी। यह देखकर कृष्णा महराजिनने पूछा—हारान कहाँ हैं?

"उनकी तबियत खराब है—लेट रहे हैं।"

कृष्णा महराजिन क्षणभर चुप रहीं। इसके बाद धीरेसे कहा—आदमीके माया-ममता भले ही न हो, लोगोंकी शरम तो कुछ रखनी चाहिए कि लोग क्या कहेंगे—क्या समझेंगे ?

यह सुनकर रुक्मिणिने होंठ बिचकाये।

क्रमशः रात अधिक होने लगी। कृष्णा महराजिन अनेक मरनेवालोंके पास बैठकर रात बिता चुकी थीं, अनेक मौतें देखी थीं। उन्हें भान पड़ा कि माधवकी साँस धीमी पड़ गई है। कुछ देर बाद माधव कह उठा—सिरमें बड़ा दर्द हो रहा है—सिर फटा जा रहा है !

कृष्णा बुआ उसके सिरपर हाथ फेरने लगीं। ज़रा रुककर फिर माधवने कहा—पेट बहुत ऐंठ रहा है ! जी बहुत मचल रहा है।

सबने परस्पर एक दूसरेके मुँहकी ओर देखा। जैसे हर एकने हर एकके मुखपर उसके मनकी बात पढ़नेकी चेष्टा की।

फिर कुछ देर सन्नाटा रहा। सभी मौन मलिन मुखसे अन्तके लिए अपेक्षा किये बैठे थे।

कुछ देर बाद छटपटाती हुई आवाज़से बड़े कातरभावसे माधवने कहा—बड़ी प्यास है।

बुआने दूधके बदले उसके मुखमें गंगाजल डाला। आग्रहके मारे माधव वह सब पी गया और वहीं बसकर चुपचाप निश्चल पड़ा रहा।

क्रमशः रोगीकी साँस रुक चली। सभीने लक्ष्य किया। कृष्णा बुआ नाड़ी देखना जानती थीं। बहुत देरतक हाथ पकड़े नाड़ी देखती रहीं। फिर सदानन्दके पास झुककर कहा—अब इसे नीचे ज़मीनपर सुलाना चाहिए।

सदानन्द चुप रहा।

रुक्मिणिने यह बात सुन ली थी। वह अस्फुट रुदनके साथ कह उठी—अब क्या देखते हो सदानन्द !

रुक्मा रो उठी, कृष्णा बुआ रो उठीं। साथ ही साथ माधवकी भी प्रायः अचेत देह नीचे उतार ली गई।

थोड़ी देर बाद माधवने और एक बार मुँह फैलाया—कृष्णा बुआने पहले ही की तरह उसमें थोड़ा-सा गंगाजल डाला। माधवमें जैसे कुछ ताकत आ गई।—

एक बार आँखें खोलकर देखा, फिर मुस्कराते हुए बोला—क्या दादा, दीदी आई है।

उमामयी पास बैठी थी। आज वह उतना नहीं रोई। कांपकर वह माधवके पास और खिसककर आ बैठी। उमामयीके सारे शरीरके रोंगटे खड़े हो गये।

और कुछ देर बाद माधवचन्द्र अत्यन्त अस्थिर—बेचैन हो उठा। वह सिर पटकने लगा—साँस बड़े जोरसे चलने लगी। देखकर कृष्ण कुमारने रो कर कहा—अब और क्या देखना है! खतम हो गया—

उमामयी चिल्ला उठी—सबका क्रन्दन उठा—सुषुप्तीयोंके भीतर—

सब लोग ऊँचे स्वरसे रो उठे। चीत्कार शब्दसे तारानाथचन्द्रकी नींद उचट गई। वह दौड़कर बाहर आए। देखा, माधवको उठाकर बाहर लाया गया है—वह भी चिल्लाकर रोये और अर्धमृत पुत्रके शरीरको गोदमें लेकर बैठ गए। रो कर पुकारा—बेटा—माधू—

माधवने भी मानो सुना है, होठोंसे बड़े एक बार कहा—बा—बू!

१०

विविध मशालोंसे, विविध दीपोंके ऊपर, अपूर्व सुन्दरी मालती अपनी आसमानी कल्पनाओंमें डूबी बैठी है। पास लगकर चमकते हुए मारबल-स्लैबके ऊपर चाँदीके शमादानमें बत्ती जल रही है। उसीके प्रकाशमें मालती एक पुस्तक पढ़ रही है। जिस कमरेमें मालती बैठी है वह बहुत अधिक सजा हुआ है। सारे कमरेमें बहुमूल्य विविध गलीचा बिछा हुआ है। दीवारोंमें बहुत तरहके चन्द-सूर्य और पुष्प-पत्र अंकित हैं। उनके ऊपर बहुतसे चित्र, बहुमूल्य आयल-पेंटिंग (तैलचित्र), ओलियोग्राफ, फोटोग्राफ आदि विभिन्न प्रकारके सुन्दर ढंगसे लगे हुए हैं। आसपास बहुत प्रकारकी शीशेकी आलमारियोंमें अनेक तरहकी वस्तुओंसे सुशोभित हैं। ऊपर छतोंसे फानूसके भीतरसे लाल, नीली, हरी और रंगीन रोशनी इधर उधर फैल रही है। दोनों ओर—कमरे-कमरे—आलमारियाँ रक्खी हैं। उनमें प्रकाश प्रतिफलित होकर एक उज्ज्वल ज्योति फैल रहा है। इन आलमारियोंमें लगी हुई शीशेकी मेजें और उनपर

ऊपर सफेद पत्थरके झरने रखे हैं। चारों ओर सफेद, काले, पीले रंगकी मनुष्योंकी मूर्तियाँ उस रोशनीमें सजीव-सी प्रतीत हो रही हैं। इस कमरेके योग्य महलमें माधवी—सजीव स्वर्ण-प्रतिमा—अकेली बैठी है। शिल्पने कसके इस पार्थिव सौन्दर्यको हजार गुना बढ़ाकर वह यहाँ बैठी है, आत्म-विस्मृत होकर मुग्ध नयनोंसे वह शोभा देखनेके लिए उस जगह और कोई नहीं था—इसीसे माधवी बैठी पुस्तक पढ़ रही है। पढ़ क्या रही है पंक्ति पर पंक्ति आँखोंके आगेसे खिसकती जाती हैं, पन्ने पर पन्ने पलटते जाते हैं; किन्तु एक अक्षर भी मनके भीतर प्रवेश नहीं करता। जान पड़ता है, पढ़ने बैठनेके पहले वह रो रही थी क्योंकि उसके आँसुओंके दाग अभी तक उसके गालोंपर जान पड़ रहे हैं। इस सुखके घरमें वह क्यों रोती थी, यह हम नहीं जानते; लेकिन रो वह निश्चय रही थी और उसी रुलाईको रोकनेके लिए उसने पुस्तककी सहायता ली थी। माधवी कोई आभूषण नहीं पहने है। माधवी मामूली वस्त्र धारण किये है। माधवी रोगी थी। माधवीके मनमें सुख नहीं है। उसने पुस्तक बन्द करके तकिये ऊपर फेंक दी। चुपचाप कोचके बाजूपर सिर रखकर बैठी रही। फिर आँखोंमें आँसू भर आये। अबकी उसने उन्हें रोकनेका प्रयास नहीं किया। अतएव एकके बाद एक करके आँसूकी बूँदें कोचकी मखमली चादरके ऊपर गिरने लगीं।

बहुत देर बाद सुरेन्द्रनाथने कमरेमें प्रवेश किया। इतने मोटे गलीचेके ऊपर चलनेका शब्द नहीं होता, इसीलिए उनका आना माधवीने जान नहीं पाया। वह वैसे रो रही थी। वैसे ही रोती रही। सुरेन्द्रनाथ चुपचाप खड़े खड़े यह देखने लगे। कुछ देर बाद और ज्यादा पास आकर खड़े हुए। उसके बाद पुकारा—माधवी!

माधवीने चौंककर ऊपर देखा। बोली—आओ।

सुरेन्द्रनाथ आकर पास बैठ गये। माधवीके दोनों हाथ अपने हाथमें लेकर स्नेहसे गीले स्वरमें कहा—फिर रो रही थी?

माधवी रोते हाथों पकड़ी गई थी इसीसे इच्छा रहते भी 'ना' नहीं कह सकी। चुप रही।"

"क्यों रो रही थी?"

माधवी बोली नहीं।

सुरेन्द्रनाथ भी कुछ देर तक कुछ भी न बोल सके। फिर मालतीके दोनों हाथ अपने हाथसे दबाकर धीरे धीरे बोले—दुःख यही है कि इतनी चेष्टा करके भी मैं तुमको सुखी नहीं बना सका; इससे हजार चाहकर भी तुम्हारा मन नहीं पा सका।

मालतीने इसका कोई उत्तर ही नहीं दिया। और भी एक काम उनसे साध्य नहीं हुआ। इसके पहले, उसने मन ही मन प्रतिज्ञा की थी कि चाहे जो हो, वह रोयेगी नहीं। किन्तु आँसुओंके ऊपर अपना प्रभुत्व बनाये न रख सकी—आँसू उसके वशमें नहीं रह सके। वे जैसे गिर रहे थे, वैसे ही गिरने लगे।

सुरेन्द्रनाथ कहने लगे—क्या क्लेशसे कोई आदमी सुखी हो सकता है, यह मनुष्य समझ नहीं सकता और देवता समझ सकता है या नहीं, यह भी मैं नहीं कह सकता। इसीके लिए, सुखके लिए यह घर मैंने इस तरह सजाया, यह देवी-प्रतिमा इस भवनमें इतने यत्नसे स्थापित की; लेकिन क्या सुखी हो सका? मुझमें आज लगे देखता हूँ—जान पड़ता है, मेरे मनुष्य का दुःखकी ही मात्रा बढ़ गई है। जिसे सुखी करनेके लिए मैंने इतना यत्न किया, उसे एक दिनके लिए भी मैंने सुखी नहीं देखा। तुमको जबसे पाया, तबसे इन होठोंपर क्षणभरके लिए भी हँसीकी एक झलक भी मैंने नहीं देखी—

कहते-कहते सुरेन्द्रनाथने हाथ छोड़कर अत्यन्त अधीर भावसे मालतीका वह अश्रु-प्लावित मुख ऊपर उठाया। फिर कहा—मालती, देखो कितने दिन हो गए! तुम क्या किसी तरह प्रफुल्लित न होओगी? तुम्हारी यह उदासी और रोना क्या किसी तरह दूर न होगा? क्या किसी तरह एक बार हँसकर मेरी ओर न देखोगी?

मालतीने हाथ उठाकर आँसू पोंछे।

सुरेन्द्रनाथ कहने लगा—यह सौन्दर्य कैसा और क्या है, इस संसार में क्या सुख हुआ है—दीखता है, वह प्रकट नहीं कर सकता। मनकी साधसे तुमको सजाऊँगा—इस आशा और अभिलाषासे कितने आभूषण खरीद लाया, कितने बढ़िया वस्त्र एकत्र किए—लेकिन घड़ी भरके लिए भी तुमने उन्हें नहीं पहना। मालती, तुम क्या सुख लेना नहीं जानती?

मालती सुरेन्द्रनाथकी गोदमें सिर रखकर रोने लगी।

सुरेन्द्रनाथकी आँखें भी गीली हो आईं। प्यार और दुलार करके मालतीके मस्तकपर हाथ रखकर गद्गद स्वरमें बोले—तुम मुझे देख नहीं सकतीं, यह मैं नहीं कहता। किन्तु और भी अनेक बातें मेरे मनमें आती हैं। तुम बुरा न मानना, मुझे जो जान पड़ता है, वह मैं आज तुमसे कह दूँ। मेरा विश्वास है कि तुमने जो राह अपनाई है, उस राहको नीच स्त्रियाँ ही अपने सुखके लिए अपनाती हैं और वह, अलंकार धन-ऐश्वर्यके सिवा उनका और क्या सुख है, यह मैं नहीं जानता। लेकिन मुझे तुम उन जैसी नहीं जान पड़ती हो। इसलिए यह भी मैं नहीं समझ पाता कि क्या करनेसे तुम सुख पाओगी। अगर यह बात होती तो अब तक तुम दुःखी हो जातीं—

कहते-कहते सुरेन्द्रनाथ क्षणभरके लिए चुप हो गये। फिर कुछ गम्भीर भावसे बोले—मालती, तुम्हारे स्वामी क्या जीवित हैं?

मालतीने गोदमें सिर हिलाकर बताया कि उसके स्वामी जीवित नहीं हैं।

"तब फिर बोलो, मुझसे विवाह करके क्या तुम सुखी हो सकोगी? बोलो—बताओ, मैं उसके लिए भी तैयार हूँ।"

अबकी मालती झुककर सुरेन्द्रनाथके पैरोंपर गिर पड़ी। हाथसे दोनों पैर पकड़कर उनमें उसने अपना मुँह छिपा लिया। किन्तु सुरेन्द्रनाथने इसमें बाधा नहीं दी। यह उन्हें मालूम पड़ गया कि आँसुओंसे उनके पैर भीग रहे हैं, तथापि उन्होंने मालतीको उठाया नहीं। बल्कि एक लम्बी साँस छोड़कर वे चुप हो रहे।

बहुत देर योंही बीती। इसके बाद अस्फुट भावसे धीरे धीरे कहने लगे—भगवान् जाने, मुझे क्या हो गया है। यह कह नहीं सकता कि तुमको मैं हृदयसे प्यार करने लगा हूँ या तुम्हारे इस अनुपम रूपने मुझे पागल बना दिया है। किन्तु यह नहीं है कि मैं अपनेको गँवा बैठा हूँ—धर्म-पुण्य सम्मानकी भावना मुझे छोड़कर चली गई है। तुम्हारी एक बातपर शायद मैं प्राणतक दे सकता हूँ। ईश्वर जानते हैं, मैं कुछ तुम्हारा मन पानेके लिए या तुम्हें फुसलानेके लिए झूठ नहीं कहता, सच ही कहता हूँ, मैं अपनेको भूल गया हूँ—जो होना था सो होगा—तुम एक बार कह दो कि तुम मेरे प्यार करनेसे ही सुखी हो सकोगी, तो मैं वही करूँगा। शान्ति, सुख, मान, इतना धन अपना—किसीकी परवाह नहीं करूँगा।—

कहते-कहते सुरेन्द्रनाथकी आँखें डबडबा आईं, गला रुँध गया। कुछ देर थमकर, आँसू पोंछ डालकर, बहुत धीरे, बहुत कोमल स्वरमें उन्होंने कहा—उसके बाद मालती, हम जैसे आदमीके लिए साफ राह पड़ी है—जब सहा न जायगा, तब आत्महत्या करके नरककी ओर सीधे ही चला जाऊँगा।

अब मालतीसे रहा नहीं गया। रोते-रोते बोली—यह बात तुम न कहो। तुमने मेरे प्राण बचाये थे, लज्जा-निवारण किया था—मेरी लाज रखी थी—दया करके आश्रय दिया था—नहीं तो मैं जीती न बचती, यह मुझे जान पड़ता है। मैं नीच हूँ, निन्दित हूँ, किन्तु अकृतज्ञ नहीं हूँ। तुम्हारी दया, तुम्हारा स्नेह इस जीवनमें मैं कभी न भूलूँगी। इन सबका बदला क्या मैं इस तरह दूँगी!

सुरेन्द्रनाथने एक लम्बी साँस छोड़कर कहा—कैसे बदला चुकेगा, यह ईश्वर जानें; मैं नहीं जानता। तुम्हें क्या बताऊँ कि कैसी यन्त्रणा, कैसी हृदयकी जलन आज महीने भरसे भी अधिक समयसे मैं भोगता आ रहा हूँ। तुम मनमें दुखी न होना—कहते लाज मालूम पड़ती है कि इतने थोड़े दिनोंमें एक बारगी ऐसा दास हो गया हूँ—एक भी—एक भी—तुम चाहे जो हो—तुम चाहे जो हो—लेकिन मैं तो बाप-दादेके मान-सम्मानको मिटानेके लिए राजी हूँ—

मालतीने भी वैसी ही रुँधी-रुँधी आवाज़में कहा—मैं—मैं तुम्हारी दासीकी भी दासी होनेके योग्य नहीं हूँ—मैं कौन हूँ जो मेरे लिए इतना सहोगे—अपने खानदानमें भी दाग लगा लोगे! मैं जन्मसे ही दुखी हूँ। मैंने अपने जीवनमें इतनी करुणा कभी नहीं पाई—अगर अन्त हो तो ईश्वर करे, यही मेरा अन्त हो।

सुरेन्द्रनाथने स्नेहपूर्वक मालतीको हाथ पकड़कर उठाया। इसके बाद उसे पास बिठाकर बोले—लेकिन तुम किसी तरह तो सुख नहीं पा रही हो।

मालतीने आँखोंमें आँचल देकर कहा—हम बड़े गरीब हैं।

"लेकिन मैं तो गरीब नहीं हूँ। मेरा जो कुछ है वह तुम्हारा भी है।"

"मैं अपनी बात नहीं कहती।"

"तो किसकी बात कहती हो? तुम्हारे तो कोई नहीं है।"

"भगवान् जानें, अब कोई है कि नहीं। लेकिन जब आई थी तब सब थे।"

"यह क्या! मार डूब जानेसे—"

"यह सब ठीक था। मार डूबी ही नहीं।"

सुरेन्द्रनाथ विस्मयसे मालतीका मुँह ताकने लगे। शायद एक बार उनके मनमें यह सन्देह उत्पन्न हुआ कि यह सब सच है या स्वप्न मात्र है? लेकिन इस मुखसे झूठी बात निकलना सम्भव नहीं। उन आँखोंमें, उन आँसुओंमें भी प्रतारणा, छल-बनावट छिपा रह सकता है—ऐसा उन्हें नहीं जान पड़ा।

कुछ देर बाद उन्होंने पुकारा—मालती!

"क्या?"

"सब सच है?"

अबकी मालती सुरेन्द्रका मुँह ताकने लगी। देखते-देखते उसकी आँखोंमें आँसू भर आये। सुरेन्द्रनाथ व्यथित हुए। अपने हाथसे मालतीके आँसू पोंछकर बोले—तो सब हाल खुलासा करके कहो।

तब मालतीने धीरे धीरे सुरेन्द्रके घुटनेपर सिर रखकर, कभी रोकर, कभी स्थिर होकर कहना शुरू किया—

बचपनमें मैं पैदा हुई सबसे दुःखकी गोदमें ही पली। लेकिन हमारे सब था। मेरे पिताने यथाशक्ति देख-सुनकर मेरा ब्याह किया था; किन्तु मैं अभागिन एक बरसके भीतर ही विधवा हो गई। जिनके साथ ब्याह हुआ, उनको शायद एक बारसे अधिक मैंने नहीं देख पाया। मैं बापके घरमें थी। विधवा होनेके बाद लगभग पाँच साल तक वहीं रही। मेरे पिता अपने गाँव हल्दपुरके पास, श्यामपुर एक मीलके फासले पर, एक जमींदारके यहाँ नौकर थे। साधारण ही तनख्वाह मिलती थी; लेकिन उसनेहीसे एक प्रकार दुःख-कष्टसे, किफायत शारीसे, हम लोगोंका गुजर-बसर हो जाता था।

इस समय मालतीका गला आँसुओंसे रुँध गया।

"उन दिनों तुम्हारे घरमें कौन कौन थे?"

"सभी थे—पिता, माता, बुआजी, हम दो बहनें और एक छोटा भाई। इसके बाद चोरीके अपराधमें पिताजीकी नौकरी छूट गई। तकदीर यह नौबत आ गई कि पिताजी नित्य भिक्षा माँगकर लाते। कभी हम लोगोंको खाना नसीब होता है और कभी भूखे ही भी रहना पड़ता। मा सती लक्ष्मी थीं—माँ-बाप जो भिक्षा पा, उसमें और सबको भिन्न-भिन्न देती थीं, और आप प्रायः नित्य ही उपवास कर जाती थीं—यहाँ तक कि लगातार दो-दो तीन-तीन दिन तक —

कहते-कहते मालती फफककर रो उठी। कुछ देर अपनेको सँभालकर फिर कहने लगी—लेकिन मेरे बाप इन बातोंकी ओर ध्यान ही नहीं देते थे। गाँजा-चरस पीते थे, यहाँ वहाँ पड़े रहते थे—कभी कभी चार-चार पाँच-पाँच दिन तक घर ही नहीं आते थे।

मेरा छोटा भाई छलना एक अरसेसे बीमार था। ठीक इलाज न हो सकनेके कारण किसी तरह आराम नहीं हो पा रहा था। जान पड़ता है अब तक वह जीता भी न होगा।—

इस समय सुरेन्द्रनाथकी आँखोंमें भी आँसू भर आये।

इसके बाद मालतीने कृष्णा महाराजिनका जिक्र किया, सदानन्दका हाल कहा, और अपनी छलनामयीकी चर्चा चलाई। मालतीने कहा—छलनामयी ब्याहके लायक न रहा हो गई, किन्तु गरीब होनेके कारण किसीने उससे ब्याह करना न चाहा। हम ब्राह्मणोंके यहाँ सयानी लड़कीका ब्याह न होनेसे आदमी जाति-च्युत कर दिया जाता है। हमारे यहाँ भी जातिच्युत होनेकी नौबत आ गई। मेरी माँकी चिन्ताके मारे नींद हराम हो गई। पिताने उधर दृष्टिपात भी नहीं किया। केवल सदानन्दका भरोसा रह गया। लेकिन वह भी देशमें न थे—अपनी शुभदाको लेकर काशी गये थे।

पिताकी नौकरी जानेके बाद धीरे-धीरे इसी तरह छ: महिने कट गये। लेकिन पास-पड़ौस टोले-मोहल्लेके लोग और कहाँ तक सहायता करते! सदानन्द दादा काशी जाते समय पचास रुपये दे गये थे, वे भी चुक गये। इस समयका हाल मुझसे आगे कहा नहीं जाता।

मालती फिर रोने लगी। सुरेन्द्रनाथ भी रोये। कुछ देर बाद आँखें पोंछकर कहा—अब आज रहने दो—और किसी दिन कहना।

मालतीने आँखें पोंछकर कहा—आज ही कह दूँ।—लोग मुझे सुन्दर कहते थे। मैं सोचती थी, कलकत्ते जाकर धन कमाऊँगी। एक दिन रातको उठकर गंगाके किनारे आई। सोचा, किनारे-किनारे पैदल कलकत्ते चली जाऊँगी। तब मुझे कोई देख न पावेगा, किसीसे राह भी न पूछनी पड़ेगी। घाटपर जाकर देखा, थोड़ी दूर पर एक बहुत बड़ी नाव घाटके सहारे धीरे धीरे उत्तर पश्चिम चली जा रही है। मैं तैरना जानती थी। नाव देखकर मनमें सोचा, डुबकी लेकर नावका 'हाल' पकड़ लूँगी और इसी तरह अन्त तक कलकत्ता

पहुँच जाऊँगी। मैंने सुना था कि कलकत्ता हमारे गाँवसे अधिक दूर नहीं है—मगर ठीक ठीक न जानती थी कि कितनी दूर है। सोचा, रात बीतते-बीतते नाव निश्चय कलकत्ते पहुँच जायगी, तब मैं भी किनारे पर उतर जाऊँगी। पानीमें उतरी, तैरकर कुछ दूर गई। इसी समय धोती मेरे हाथ-पैरमें—सारे शरीरमें लिपट गई, मैं भी प्रायः डूबनेको हुई। किन्तु अन्तमें बड़ी मुश्किलसे धोतीका पेच खोल पाई। पर धोती मेरे हाथसे खिसककर निकल गई। इसी समय वह नाव मेरे पास आ पहुँची। मेरे हाथ-पैर भी काम नहीं दे रहे थे। सोचा, अब कोशिश न कर सकूँगी, इसीसे नावका 'हाल' कसकर पकड़ लिया। नाव चलने लगी, मैं भी साहस करके उसे छोड़ नहीं सकी। डर लगा कि छोड़ते ही डूब जाऊँगी। इसी तरह नावके सहारे बहुत दूर चली आई। तब फिर कोई जानेका भी उपाय न था। अन्तमें यह ठीक किया कि प्रातःकाल गंगा-स्नान करनेके लिए अनेक स्त्रियाँ आया करती होंगी। और उनके पास पहननेकी धोती भी रहती है। उनसे एक धोती भीख माँग लूँगी—नंगी देखकर किसी कीको दया आ ही जायगी। इसके बादका सब हाल तुमको मालूम है।

सुरेन्द्रनाथ बड़ी देरतक चुप बैठे रहे। इसके बाद धीरे धीरे मालतीको अपने पास खींच उन्होंने कहा—जिसके लिए इतना किया, इतने दिनोंमें उसका कुछ उपाय किया है क्या?

मालतीने सिर हिलाकर कहा—ना।

"यह जानता हूँ। और इसीसे सोचता हूँ कि जो मुँह खोलकर एक बात नहीं कह सकता उसने किस साहससे इतना कर डाला।"

मालती चुप होकर सुनने लगी।

"हर महीने कितने रुपये होनेसे तुम लोगोंका काम चल जायगा?"

"बीस रुपये। यही पिताको मिलता था।"

"अच्छा हर महीने वहाँ पचास रुपये भेज दिया करो।"

"तुम दोगे?"

सुरेन्द्रनाथ हँसकर बोले—हाँ, दूँगा। और चाहो तो और भी दूँगा।

मालतीने मन ही मन कहा—इतने दिनमें मेरा जन्म सार्थक हुआ।

"इसके सिवा और एक काम करो। मुझसे प्यार कर लो, क्योंकि भगवान जानेपर भी—इससे अच्छा हृदयमें मैं कलंककी छाप नहीं लगने दूँगा।

मालतीने सुरेन्द्रकी छातीमें सिर छिपाकर कहा—ना ।

"यह 'नहीं' क्यों ? तुम सोचती हो कि इससे मेरी शांति जायगी? लेकिन मैं यहाँका जमींदार हूँ—मेरे पास बहुत धन है । जिसके पास दौलत है उसकी शांति कहीं नहीं जाती ।"

"सड़कर तो मरोगे ?"

"मरूँगा, लेकिन वह भी अधिक दिन नहीं जियेगी ।"

"कौन, धन, मान, प्रतिष्ठा ?"

"मालती ! एक दिनके लिए भी इस सबको भूलने दो । जगत्में आकर मैंने बहुत धन पाया है, किन्तु सुख कभी नहीं पाया । एक दिनके लिए ही सही, मुझे यथार्थ सुखी होने दो ।"

सुरेन्द्रनाथकी बात सुनकर मालतीका हृदय भीतरसे काँप उठा, लेकिन उसे उसने दबा दिया । धीरे धीरे बोली—मैं तुम्हारे पास हमेशा रहूँगी ।

"ईश्वर करे, यही हो । तुम हमेशा रहोगी; लेकिन मैं क्या रह सकूँगा ? तुमने दुनिया नहीं देखी लेकिन मैंने देखी है । मैं जानता हूँ कि मुझे अपनेपर विश्वास नहीं है । जिस प्रेममें तुम अपना सारा जीवन मनोमें लिए होगी, उस प्यारको मैं किसी दिन छिन्न-भिन्न करके भाग जाऊँगा । मालती, समय रहते तुम चौंक उठो ।

मालतीने अच्छी तरह सब सुना, बहुत दिनोंके बाद और एक बार स्थिर होकर सोच लिया । उसके बाद दृढ़ स्वरमें बोली—सोच लिया है, हो सके तो इस कल्पनाको छोड़ो । इसके ऊपर और कल्पनाकी जरूरत नहीं है ।

"तुम्हें नहीं है, किन्तु मुझे है ।"

"होने दो, मगर प्यार नहीं हो सकता ।"

"क्यों, क्या विधवाको प्यार न करना चाहिए ?"

"विधवासे प्यार करना चाहिए, मगर बदनाम नहीं ।"

सुरेन्द्रनाथका सारा शरीर काँप उठा । बोले — तुम क्या कहती हो ?

"नहीं तो क्या हूँ ? आप ही सोचकर देखो न ?"

"छी-छी ! वह बात जबानपर न लाओ । मैं तुम्हें कितना प्यार करता हूँ !"

"इसीलिए वह जबानपर लाई । नहीं तो शायद प्यार करनेको राजी हो जाती ।"

"मालती!"

"क्या?"

"सब खुलासा कहो।"

"कहूँगी। तुम्हारे सिवा मेरी देहको पहले कभी किसी पुरुषने स्पर्श नहीं किया। किन्तु मैंने मन-ही-मन एक आदमीको अपना मन-हृदय सब कुछ अर्पण कर दिया था।"

"उसके बाद?"

"यहाँ आनेके बादसे उसने मुझसे प्यार नहीं किया?"

"वह अपना मन और हृदय तुमने चोरी कैसे किया?"

"वैसे उसने चोरी किया।"

"वह तुमसे हो सका?"

मालतीने बड़ा चुप रहकर कहा—पहले ही कह चुकी हूँ कि मैं वेश्या हूँ—वेश्या सब कर सकती है।

"वह आदमी क्या दयानन्द है?"

"नहीं, और एक आदमी है।"

"तो तुम आदमीको पहचान नहीं पाई। उससे तुमने कहा क्यों नहीं? वह तुमको प्यार करता था।"

सहसा मालतीके सारे शरीरमें बिजलीका प्रवाह-सा दौड़ गया। वह पागल हुआ! मालतीको वह सारा दिन याद आ गया। वह सन्ध्याके समय घाटसे जल लेने गई थी। राहमें पानी बरसने लगा। भीगनेसे बुखार आ जानेके भयसे उसने तराजदके घरमें आश्रय ग्रहण किया। याद आया, वही पहले-पहल उससे रुपये-पैसेकी सहायता पाना, उसके बाद नित्य हाथमें रुपये थमा देना। वह उसका अपनी पालनेका दिन। वह तकियेके नीचे चोरसे रुपये रख जाना। और न जाने क्या-क्या। बुखारके समय वह सहानुभूति दिखलाना याद आया। क्षण भरमें उसकी पलकें आँसुओंसे भारी हो गईं। किन्तु आँसू बहनेके पहले मालतीने उन्हें पोंछ डाला। किन्तु सुरेन्द्रनाथ उन आँसुओंको नहीं देख पाये। वह चौकीके हत्थेपर झुके हुए आँखें पोंछकर और अनेक बातें सोच रहे थे। बोले—उसके बाद क्या हुआ?

"कमरेसे जा रही थी।"

"फिर ?"

"तुमने दया करके अपने चरणोंमें स्थान दिया।"

पूर्वोक्त प्रश्न उन्होंने अन्यमनस्क होकर किया था। उत्तर सुनकर उन्हें अपनी गलती समझ पड़ी। उठकर बैठते हुए बोले—मालती, तुम धन्य हो। धनको कुस्थानमें पानेपर भी उसे गलेमें पहनना होता है।

"किसने कहा? जिस धनको एक आदमी गलेमें पहनता है, उसे दूसरे प्रायः पैरोंमें जगह देनेमें भी घृणाका अनुभव करते हैं। तुम मुझे चरणोंमें स्थान देना—मैं अगर रत्न हूँ तो उसीको अपना परम सौभाग्य समझूँगी।"

सुरेन्द्रनाथ जरा हँसे। बोले—मालती, मैं सोचता था कि तुम मोम हो, लेकिन वह तुम नहीं हो।

मालती भी जरा हँसी। सुख और व्यथासे भरा एक पहले-पहल उसके होठोंमें हँसीकी झलक दिखाई दी।

इसी समय बाहरसे दासीने कहा—बाबूजी, अधीर बाबूकी गाड़ी आकर बाहर खड़ी है।

सुरेन्द्रनाथको विस्मय हुआ। अधीर बाबू! लेकिन इस समयके मकानमें क्यों?

"उन्होंने कहला भेजा है कि मिलनेकी बड़ी जरूरत है।"

सुरेन्द्रनाथ पलंग उठकर बोले—अच्छा तो अब जाता हूँ मालती।

"अच्छा। लेकिन यह अधीर बाबू कौन हैं?"

"फिर बताऊँगा।"

"अधीर बाबूने पूछना, उनका ब्याह कहीं हुआ है?"

सुरेन्द्रनाथ हँस पड़े। बोले—उनसे कोई परिचय है क्या?

"जान पड़ता है, कुछ-कुछ है।"

११

जैसे हमेशा माना जाता है आकाशमें पत्थर फेंकनेसे वह पत्थर भूमिपर गिरता ही है, खून करनेसे फाँसी पर चढ़ना होता है, चोरी करनेसे जेल जाना पड़ता है। वैसे ही प्यार करनेसे रोना भी होता है—अन्यान्य नियमोंकी तरह यह भी जगत्‌का एक नियम है। किन्तु यह नियम किसने बनाया, यह हम नहीं जानते। ईश्वरकी इच्छासे स्वतः प्राप्त होकर आँखोंसे पानी बाहर हो

निराश पड़ता है अथवा मनुष्य खोखला होता है, या ऐसा विश्वाससे मण्डित अन्धकार होनेके कारण रोना पड़ता है, यह वे ही लोग निश्चित रूपसे कह सकते हैं, जिन्होंने पहले प्यार किया है और फिर उसके बाद रोए हैं। हम अधम हैं, इसका स्वाद कभी नहीं पाया नहीं तो इच्छा थी कि प्यार करके एक बार खूब रो लेंगे—यह परीक्षा करके देखेंगे कि प्यारका रोना मीठा होता है या कड़वा। फिर इसमें एक बड़ी आशंकाकी बात भी है। सुनते हैं, इसमें कभी फाँसीकी भी नौबत आ जाती है। मैंने [illegible] सिरपर इसके दो हाथ पीछे हटकर खड़े होते हैं, मनमें सोचते हैं, इस फेरमें हरगिज नहीं पड़ेंगे। भाग्य अच्छा नहीं है; क्या जाने, कहीं परीक्षा करनेमें अन्तको सारी जवानी ही धर न भोगना पड़े। इस इच्छाको मैंने भविष्यपर इसीलिए दे दिया है। मगर जाननेका कौतूहल बना हुआ है। जहाँ कोई प्यार करके रोता है, वहाँ मैं ताक-झाँक करके देखा करता हूँ; निर्भय, लेकिन मुझसे डरते डरते अपेक्षा करके बैठा रहता हूँ—शायद अब इसका कलेजा फट जायगा और मैं देख पाऊँगा। लेकिन जब वह अपनी आँखोंके आँसू पोंछकर आनन्द भरा मनसे उठ बैठता है, तब मैं कुण्ठित होकर लौट जाता हूँ। पर ऐसी इच्छा नहीं करता कि इन प्यार करनेवालोंकी छाती फट जाय। किन्तु न जाने क्यों, देखनेकी इच्छा भी इस नासमझ मनसे दूर नहीं कर पाता। आज भी यही देखनेके लिए मालतीके यहाँ आया हूँ। जो कहना है, वह आज कहता हूँ; किन्तु जो सीखा है, वह यह है—मनुष्य प्यार करके ईश्वरके समान बड़ा होता है; मालतीके कैसे वे प्यारके आँसू बहकर भगवान्के चरणोंमें कमलके फूलकी तरह खिल उठते हैं। मरनेको भूलकर, लोक अलोककी चिन्तना न करके, प्राय चरणोंमें मालतीका-सा आत्म-बलिदान केवल भगवान्की ही भावना की जाती है—मनुष्य इससे कौतूहल हो जाता है। लोग देखकर शायद पागल कहते हैं और मैंने भी तो पहले कितना कहा है—किन्तु तब मैं यह नहीं समझ पाया था कि इस तरहका प्रेम-पागल साधारणतः संसारमें नहीं मिलता। ऐसा पागलपन होना भी बड़े जन्मोंसे इस जीवनकी बहुत कुछ साधना होती है।

सुरेन्द्रनाथके चले जानेपर किवाड़े बन्द करके मालती बरामदेपर लेट गई। वह कितना रोई, यह नहीं बताऊँगा। जान पड़ता है, वह सोचकर रो रही थी कि अन्धकारके उस प्यार और इस प्यारमें कितना अन्तर है। मालतीने सुरेन्द्रको

सचमुच प्यार किया है, उस प्यारमें गहरी कृतज्ञता भी आ मिली है। साफ है अपने सुखकी इच्छा। उस बात पर, वह सुरेन्द्रनाथके लिए हँसते-हँसते अपने प्राण भी दे सकती है।

मालती आप ही आप कहने लगी—तुम मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हो—तुम्हारा एक बाल भी बाँका होते देखकर उसके लिए मैं मर सकती हूँ। तुम मेरे लिए कलंक मोल लोगे? केवल मेरे कारण तुम्हारे चरित्र पर लोग इस तरहकी बातें कहेंगे—बुरा-भला कहेंगे, तुम यह सहोगे? मैं अज्ञात-कुल-शील हूँ—कोई मुझे जानता-पहचानता नहीं, मुझे कोई लज्जा नहीं है। किन्तु तुम महत् हो—तुम्हारा कलंक, तुम्हारी बदनामी यह सारे संसारमें फैल जायगी। लोग कहेंगे कि तुमने एक वेश्यासे प्यार किया है, समाजमें तुम हीन हो जाओगे, तुम्हारा सिर नीचा होगा, तुम मर्मभेदी पीड़ाका अनुभव करोगे। मैं यह नहीं होने दूँगी। फिर हिचककर मालतीने कहा—यह न होगा। मैं यह किसी तरह नहीं होने दूँगी।

मालती स्थिर होकर उठ बैठी। आँखें पोंछकर, दोनों हाथ जोड़कर बोली—भगवन् मैंने इस जीवनमें जितना पाप किया है, जितने अपराध किये हैं, सब तुम जानते हो किन्तु उस दिन न भूलना। संसारमें मेरे लिए और जगह नहीं है। लेकिन अगर कभी वह दिन हो, कभी स्वामीका स्नेह त्यागना पड़े, तो उस दिन तुम मुझे उठा लेना—पतिता होनेपर भी अपने चरणोंमें स्थान देना।

उस रात्रि मालती उसी जगह पड़ी रही। दूसरा दिन आया, पर सुरेन्द्रनाथ नहीं आये। दिनभर मालती बैठी राह देखती रही। बड़ी रात गये सुरेन्द्रनाथ आये। उनके चेहरेपर और दिनोंकी अपेक्षा इस समय अधिक चिन्ता और कष्टकी छाप थी। यह देखकर मालती कुछ चकित हुई किन्तु कमरेमें प्रवेश करते ही सुरेन्द्रनाथने हँसकर कहा—मालती, शायद दिन भर मेरी राह देखती बैठी रही हो?

मालतीका चेहरा सुर्ख हो गया। वह कुछ बोली नहीं।

सुरेन्द्रनाथने कहा—गुस्सा क्यों, क्या करूँ? मुकदमेसे एक दिन भी छुट्टी नहीं मिली। जिसके लिये है, उसे उतना ही कष्ट भी है।

मालतीने कहा—मुकदमेकी बात क्यों है?

सुरेन्द्र हँसे। "क्यों कहता हूँ, यह बादको समझ लेना। पहले मेरी बातको—सारी बातचीतको अपनी समझना सीखो, उसके बाद समझ लोगी कि मुझसे क्यों कहता हूँ।"

माधवी चुप होकर तरह तरहकी बातें सोचने लगी।

सुरेन्द्रने कहा—माधवी, उस बातके बारेमें तुमने कुछ सोचा था?

"कौन-सी बात?"

"कौन-सी बात? इतनी बात आप ही भूल गईं?"

"भूली नहीं, याद है।"

"याद तो रखोगी ही। लेकिन उसके बारेमें सोचकर देखा था क्या?"

"हाँ, ब्याह किसी तरह नहीं हो सकता।"

"नहीं हो सकता? यह क्या कहती हो?"

"यह तो मैं पहले ही कह चुकी हूँ।"

"क्या है मेरा फिर? ब्याह मैं जरूर ही करूँगा।"

"मैं नहीं होने दूँगी। मुझे यहाँ आये एक महीनेसे ऊपर हुआ। अगर यही तुम्हारे मनमें था, तो पहले ब्याह क्यों नहीं कर लिया? अब समझी जा रहे हैं कि तुम मुख मनाल्तीके स्थानपर कलरोज और एक औरत ले आये हो।"

सुरेन्द्रनाथ कुछ अन्यमनस्क हुए। बोले—मैं भी तो सोच-विचारमें था, सार होता—मैं—

"न मानोगे तो मैं सिर दे दूँगी।"

सुरेन्द्रनाथने जरा हँसकर कहा—यह फिर बादको समझ लिया जायगा। फिलहाल सात दिनके भीतर ही सब तैयारी कर दूँगा।

"तो सात दिनके भीतर ही फिर मुझे देख न पाओगे।"

सुरेन्द्र विस्मयके मारे कुछ देर माधवीके मुँहकी ओर ताकते रहे। फिर कहा—कहाँ जाओगी?

"कहीं तो जाऊँगी।"

"जान दे दोगी?"

"मरूँगी नहीं, क्योंकि मैं मर न सकूँगी। लेकिन जिस रास्तेसे आती थी, उसी रास्तेसे फिर चली जाऊँगी।"

"तो भी वचन नहीं स्वीकार करोगी?"

"नहीं।"

प्रेम भरे स्वरको सुनकर सुरेन्द्रनाथने अच्छी तरह समझ लिया कि मालती कुछ नहीं कहती। कुछ देर सोचनेके बाद सूखी हँसी हँसकर बोले—तुम क्या करो—यह तो तुम दोनोंका मामला है। अच्छी बात है, यही सही।

अबकी मालतीने कोई उत्तर नहीं दिया। मौन मुखपर सिलवट भर लिया। बड़ी देर तक दोनोंमें कोई बात नहीं हुई। फिर सुरेन्द्रनाथने पूछा—घरको रुपए भेज दे क्या?

मालती इस समय रो रही थी। सिर हिलाकर उसने बताया कि नहीं भेजे।

"क्यों नहीं भेजे?"

मालती चुप हो रही। अबकी सुरेन्द्रनाथको मालूम हुआ कि मालती रो रही है। पूछा—हाथमें रुपये नहीं थे?

"ना।"

"कुछ भी न था?"

"ना।"

"इतने दिन आये हुए, कुछ भी नहीं जमा किया?"

मालती रोने लगी—कुछ भी नहीं। सुरेन्द्रनाथने यह प्रश्न व्यर्थ ही किया था। वरन्, वह खुद ही खूब जानते थे कि उसके पास कुछ भी नहीं है। कुछ देर बाद हाथ पकड़कर मालतीको पास लाकर बिठानेके बाद उन्होंने स्नेहसे आर्द्र स्वरमें धीरे-धीरे कहा—आप अगर इस तरह मुसीबत बनकर रहा तो मैं क्या कर सकता हूँ—तुम्हीं बताओ? एक अच्छा कपड़ा नहीं पहनोगी, एक गहना नहीं पहनोगी क्या तुम्हें पसन्द है, क्या अच्छा लगता है, यह मुँह खोलकर नहीं कहोगी। तब मैं क्या करूँ? इसके बाद पाकेटसे एक नोटोंकी गड्डी निकालकर कहा—इन्हें अपने पास रख लो। इसमेंसे जितने चाहो उतने रुपए भेज देना। बाकी जो रहें उन्हें आसानीके साथ खर्च करो। बीच बीचमें कुछ माँग लिया करो। फिर जरा हँसकर कहा—रुपए जमा करना सीखो।

मालती चुपचाप सुनती रही।

"भूलना नहीं—आज रुपए भेज देना।"

"कैसे भेजोगी?"

"रजिस्ट्री करके चिट्ठीमें भेजना।"

"मुझसे यह न हो सकेगा। तुम और किसीके नामसे भेज दो।"

"क्यों? लोगोंके जान जानेसे डरती हो?"

"हाँ।"

"तो अपने वकील अघोर बाबूसे कह दूँ। वह कलकत्तेमें रहते हैं—वहींसे भेज देंगे।"

"यही ठीक है। लेकिन अगर कोई उनके पास मेरा पता पूछनेके लिए आवे—तो?"

"वह जैसा समझेंगे वैसा जवाब देंगे।"

"नहीं। उनसे मना कर देना कि वह किसी तरह तुम्हारा नाम न जाहिर करें।"

"अच्छा, ऐसा ही होगा।"

१२

जयावती मर गई, लेकिन उसकी मा जिन्दा है। नारायणपुरसे कुछ उत्तर और रामपुर गाँवमें जयावतीका घर था, वहीं जया और उसकी मा रहती थी। उनका गुजर-बसर कैसे होता था, यह वे ही जानती थीं। और सुनते हैं कि गाँवके दो-चार बड़े-बूढ़े लोग भी यह जानते हैं, लेकिन हम लोगोंको यह रहस्य जाननेसे कोई लाभ नहीं है। इस बातको छोड़ो। इसी तरह कुछ दिन बीते। इसके बाद न मालूम किस उपायसे जयावती नारायणपुरके जमींदार प्रभूके निजी मकानके एक भागमें जगह पा गई थी। जैसे वह पहुँची उसी तरह उसकी मा भी आ गई। और दोनोंने अपनी गृहस्थी जमा ली। किन्तु जयाकी माका स्वास्थ्य अच्छा न था, इसलिए पाँच-छः महीने बीतने-न-बीतते मा-बेटीमें कलह होने लगी। कुछ दिन बाद ऐसा हो गया कि सुबह-शाम दोनों वक्त चिल्ला-चिल्लाकर दोनों एक दूसरेकी मौतकी कामना और शीघ्र ही भव-बन्धनसे छुटकारा पानेकी विशेष प्रार्थना किये बिना जल ग्रहण न करती थीं। इस तरह भी दिन बीतने लगे—और भी छः महीने बीते। इसके बाद जयाकी मा महलमें रहनेकी कामना छोड़कर अपने पुराने परित्यक्त मकानमें चली गई। जान पड़ता है, उसे वहीं जानेके लिए बिल्कुल

प्रचार कर दिया गया था; क्योंकि जाते समय वह जिस तरह निर्मम भावसे छाती पीटते पीटते और कन्याके कल्याणकी भिक्षा भगवान्से माँगते माँगते गई थी, उसे देखकर यह किसी तरह नहीं जान पड़ता था कि वह स्वेच्छासे सुखपूर्वक यह घर छोड़कर जा रही है। इसीसे सुरेन्द्रनाथकी मनाही थी कि वह हरामजादी किसी तरह इस घरकी ड्योढ़ीमें न घुसने पावे। किन्तु ऐसा होता न था। वह अभागिनी फिर आती, फिर प्रवेश करती, किन्तु फल कुछ न होता था, बहुत तरहके गाली-गलौज, कोसाकाटी, मारपीट, और जोरसे छाती पीटना, सिरके बाल नोचना और अन्तमें नौकरके हाथका अर्धचन्द्र (गर्दनिया) इत्यादि उपद्रवोंके साथ कन्याकी माको काशीपुरमें फिर वास करनेके लिए लौट जाना पड़ता। हर महीने या दूसरे-तीसरे महीने यह झगड़ा-बखेड़ा नियम ही हुआ करता था। जान पड़ता है, इसमें भीतर ही भीतर उसका कुछ भ्रम था नहीं तो केवल इतनी सी बातके लिए वह इतना परिश्रम करके इतनी दूर बार बार न आया करती। वह ऐसे चरित्रकी औरत थी, उससे ये सब अपमान इतना श्रम सहनेमें वह बरदाश्त कर सकती थी। खैर छोड़िए इन बातोंको। ऐसा भी हो सकता है कि वह अपने अनमोल रत्न कन्याको बहुत चाहती थी, इसीलिए कुलत्यागिनी होने पर भी वह उसकी ममताको भुला नहीं सकती थी और समय-समय पर उसे देखने आ जाती थी। इसी तरह हुआ करता था। इसके बाद जब उसने सुना कि कन्यासुन्दरी गंगामें डूब गई, तब चीत्कारके छलसे काशीपुरकी आधी आबादीको उसने अपने घरके सामने जमा कर लिया।

काशीपुरमें अधिकांश जातिके लोग ही रहते थे। इसीसे अधिकांश ही गली-किनारेके घरकी बूढ़ी, अधेड़, जवान सब तरहकी औरतोंसे घड़ीके भीतर द्वार दरबार-सी-भीड़से भर गया। तब सबोंने विस्मयसे आँखें फाड़कर अकस्मात् शोककी वह कहानी कन्याकी माके मुँहसे सुनी कि कन्यासहित जहाज, जो एक बीच दरिया चला था, मय पाँच सौ दास-दासियों सहित बंगालेमें मुग्धी नदीके भाग बीचमें डूब गया।

फिर कन्याकी माने कहा—वे लोग कहते हैं कि इतना बड़ा जहाज कलकत्ता शहरमें दूसरा नहीं है।

एक बुढ़ियाने इसे सोचते हुए कहा—सो तो नहीं ही है।

एक अधेड़ औरत विस्मित होकर पूछ बैठी—उसके

बतासीकी माने कहा — आ बच्ची, दामोंका क्या कोई लेखा-जोखा है! यह कहकर चुप रह गई।

बतासीकी माने कहा — खुद कप्तान साहब तक देखने आये थे।

युवतियाँ कान खड़े करके उठकर बैठ गईं।

बतासीकी मा—खुद कप्तान साहब तक रो पड़े। मेरी बच्चीको सभी प्यार करते थे न!

यहाँ पर बतासीकी माने आँखोंके कोनेमें आँचल रगड़ लिया। और सुननेवालियोंके हृदयमेंसे अनेकने मन-ही-मन भगवान्से यह प्रार्थना की कि फिर पुनर्जन्मके दूसरे जन्ममें बतासीके रूपमें वे उत्पन्न हों।

बतासीकी मा बोली—बतासीके रूपकी क्या कोई हद थी! साक्षात् दुर्गाकी प्रतिमा थी!—आहा कैसी नाक थी, कैसी आँखें थीं, कैसी गर्दन थी! किसी अंगमें क्या कहीं एक तिल भी दोष था?

युवतियाँ चुप रहीं, किन्तु बुढ़िया, मोटा यहाँतक कि दो-तीन अधेड़ोंने भी यह स्वीकार किया कि इसमें कोई सन्देह नहीं है—स्वतः सिद्ध है।

"और बाबू क्या कम चाहते थे! उसने जब जो माँगा, वही पाया। इतने बड़े खानदानी आदमीकी नजरमें पड़ना क्या कोई साधारण बात है!"

इस बातको मन-ही-मन प्रायः सभी सुननेवालियोंने स्वीकार किया।

"मैं भी अब ज्यादा दिन नहीं जिऊँगी—यह शोक क्या सहा जायगा!"

इसमें किसी किसीको शायद सन्देह भी था; किन्तु सहानुभूति प्रकट करनेमें कोई नहीं चूका।

एकने पूछा—जमींदार बाबूका क्या हुआ?

"वह अच्छी तरह हैं। असलमें दूसरे जहाज पर थे न, इसीसे बच गये।"

एकने पूछा—तो क्या दोनों जने अलग अलग जहाजमें थे?

"और नहीं तो क्या—दोनोंके लिए एक जहाज काफी कब था! साथमें आदमी क्या कम थे।"

दूसरीने पूछा—उन सबका क्या हुआ?

"मगर! सभी डूब गये।"

बह बैसा इसी तरह कटी। इसके बाद संध्या हो गई, 'चलता अब काम करनेको पड़ा है—जाती हूँ' या 'अब क्या करोगी? जिंदगी-मौतमें किसीका वश (बस) नहीं' अथवा 'धीरज धरो—अच्छा तो अब जाऊँ' इत्यादि कहकर सभी एक-एक करके खिसक गईं। कुसुमकी मा भी कमरेके किवाड़े बन्द करके जो कुछ था वही पकाकर खा-पीकर पड़ रही और जब तक नींद नहीं आई तब तक सिसक सिसककर पड़ोसिनोंकी नींद हराम करती हुई उनके हृदयमें चौंक देने वाले बराबर जोर जोर छातीके रोनेकी याद करती रही।

दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही कुसुमकी मा नारायणपुरकी ओर चल दी। धीरे-धीरे वह नारायणपुरमें पहुँची। वही राह, वही घाट, वही खेतोंकी मेंड़, वही सब—सभी परिचित था। कुसुमकी माको याद आया कि इसी राहसे वह अपनी थी और इसी राहमें उसकी पीठकी हुई ओर जाती थी। अब वह नहीं है। वैसा झगड़ा अब कभी न होगा, उस तरह उसकी पीटनेको भी न मिलेगा। बेसुर्ध वेदनासे उसका हृदय आकुल हो उठा। इस्तालुने धीरसे उस वेदनाको दमन करती हुई कुसुमकी मा आगे बढ़ी। जिसके घरके सामने होकर वह जाती थी, उसका जो काम छोड़कर भी उससे कम एक बार दरवाजे या खिड़कीके पास आकर अवश्य खड़ा होना पड़ता था। क्रमशः सुरेन्द्रबाबूका घर आ गया। वही तो है सामने। कुसुमकी कितनी ही स्मृतियाँ उससे जुड़ी हुई हैं। कुसुमकी माने आकुल भावसे रोनेका भार हृदयमें रख दिया। पहले वह कभीके घरके भीतर घुसने नहीं पाती थी। कारण, बाबूने मना कर रखा था। किन्तु आज वह इस तरह पगलीकी तरह रोते-रोते घुस पड़ी कि दरबानोंको रोक देनेका साहस किसी तरह नहीं हुआ। सभी सहमकर एक तरफ खड़े रह गये।

सुरेन्द्र बाबू उस समय भोजनके बाद विश्राम करनेका प्रबन्ध कर रहे थे। चीत्कार सुनते वह समझ गये कि कुसुमकी मा है। आँधीकी तरह वह सुरेन्द्रबाबूके पास पहुँची और बाबूजीको सामने पाकर फिर मन्दस्वरसे एक आवेदन करके ही उनके कुछ ही फासलेपर बैठ गई। इसके बाद और एक आवेदन, फिर एक आवेदन—एक बात पूरी होते-न-होते फिर-फिर वैसा दूसरा आवेदन, विलाप-अलाप, बैठकर हाथ मलना इत्यादि सब प्रदर्शन करके उस बुढ़ियाने सुरेन्द्रबाबूको एकदम विकल विमूढ़-सा

इसके बाद माथा पटकना, और जोरसे छाती पीटना, जैसे जताना और बाल नोंचना आदि जो कुछ हुआ, उसका पूरा-पूरा विस्तारसे वर्णन करना हमारे बूतेके बाहरकी बात है।

सबके अन्तमें यह कहकर उसने अपना वक्तव्य समाप्त किया कि अब उसके पास खाने-पीनेके लिए एक पैसा भी नहीं है। अगर बाबू दया न करेंगे तो वह भूखों मर जायगी, और नहीं तो यहीं गलेमें रस्सीका फन्दा डालकर उसकी बताशी जहाँ गई है, वहीं चली जायगी।

सुरेन्द्रबाबूने कहा—अच्छा अब कितना मिलनेसे तुम्हारा काम चल जायगा?

बताशीकी माने, आँखें पोंछकर कहा—भैया, मेरा काम तो बहुत थोड़ेमें ही चल जायगा—मैं विधवा हूँ, मेरे कोई नहीं है—मेरे खाने-पहननेमें कितना लगेगा!

"तो भी कितने रुपये चाहती हो?"

"पन्द्रह रुपए हर महीने पानेसे मेरा गुजर हो जायगा।"

"अच्छा वही मिलेगा। जब तक जियोगी, महीने-महीने कचहरीसे ये रुपए ले जाना।"

तब बताशीकी माने बाबूको बहुत-बहुत असीसा, अनेक प्रशंसा करनेवाली बातें कहीं—इसके बाद चल दी। जाते समय वह फिर उस तरह रोते-रोते नहीं गई, बल्कि और भी अनेक बातें मनमें सोचती हुई गई। बताशी मर गई है, मा होनेके नाते उसने हृदयमें असह्य व्यथाका अनुभव किया है, किन्तु कुछ सुविधा भी हुई है—जाते समय बताशीकी मा यह सोचना नहीं भूली।

सुरेन्द्रसे विदा होकर बताशीकी मा सीधी नहीं चली गई। जिस स्थानपर घरके नौकर-चाकर रहते थे, वहाँ आकर उपस्थित हुई। वहाँ उसके परिचित अनेक दास-दासी थे, उनमेंसे अनेकोंने ही बताशीकी माके दुःखमें सहानुभूति दिखाई, दुःख प्रकट किया। दो-एक जनी रो भी दिए।

बताशीकी माने बहुत-सी बातें कीं, सुरेन्द्रबाबूकी दयाकी भी चर्चा की, किन्तु क्रमशः बातों ही बातोंमें जब उसने सुना कि उसकी बताशीके स्थानपर और एक स्त्री आ गई है और बाबूने उसे बड़े आदर-प्यारसे बागके घरमें स्थान दिया है, तब बताशीकी माने और ही रूप प्रकट किया। उसकी आँखोंसे आग बरसने लगी। स्थान-कालका खयाल न करके उसने वहीं बागके घरमें रहनेवालीके

फिर खूब ज़ोरसे रोना-धोना करना और गाली-गलौज करना शुरू कर दिया। क्रोधसे आवाज़ क्रमशः ऊँची होने लगी — अदृश्य उद्देश्यसे फिर नये सिरेसे सर पर पटकना और छाती पीटना शुरू हो गया। बाल-बच्चों सब डरे, शान्त करनेके लिए बहुत समझाया, अन्तमें धमकी तक भी दिखाया, यह भी कहा कि नाराज़ होकर सब रुपए देना बन्द कर देंगे, किन्तु बच्चोंकी माने बहुत देर तक इस पर ध्यान ही नहीं दिया। अन्तमें उन्होंने थक होकर और उनका क्रोध निकाल, और तब बड़ी मुश्किलसे बच्चोंकी माके हाथसे उन्होंने छुटकारा पाया।

रातमें आकर बच्चोंकी मा सामने घरकी ओर चली। [illegible] उसका कलेजा धड़क रहा है — ईर्ष्याकी आगने उसकी हड्डी-पसलियोंमें आग लगा दी है। उसे ध्यान पड़ता गया कि इस औरतने ही उसकी कन्याको छुड़ा दिया है, और आप बलपूर्वक उसके स्थानपर आ बैठी है। धड़कते-धड़कते बच्चोंकी माँने सामने घरमें प्रवेश किया। जो दासी सामने पड़ी, उसकी ओर क्रोधसे भरी [illegible] आँखोंसे ताककर बोली — वह डाइन कहाँ है?

वह दासी बच्चोंकी नई नई आई थी। उसने डरते डरते पीछे हटकर कहा — [illegible] नहीं है।

बुढ़ियाने जैसा प्रश्न किया था वैसा ही उत्तर पाया। वह भी उसका अर्थ समझ नहीं सकी। और एक बार दासीकी ओर देखकर बुढ़ियाने पूछा — कहाँ है?

वह उँगली उठाकर सीढ़ी एक तरफ दिखाकर खिसक गई। बच्चोंकी माँ सीढ़ियोंसे ऊपर चढ़ गई। वहाँ हर एक कमरे और कोठरीमें घूमने लगी — किसीका पैर नहीं छुआ — किन्तु यह कैसी शोभा है! कितना सजधज, कितनी सजावट है! बुढ़िया पहले सुरेन्द्रबाबूके इस घरमें बहुत दिन रह गई है। यहाँ उसने बहुत-सी चीजें और सामान देखा है, किन्तु ऐसी सजावट तो कभी नहीं देखी। जिसका देखती थी उतना ही पुष्पवासी [illegible] थी [illegible] नायिकाकी तरह। उसे ध्यान आने लगा कि यह सब जयालीका होगा। और कौन जानता है कि किसी समय शायद उसका ही हो जाता!

इसी तरह मनमें तर्क-वितर्क करते-करते उसने एक कमरेमें एक औरतको पाया। "तुम्हारी मालकिन कहाँ है?" अन्यमनस्क [illegible]

"सुन रही हूँ।"

"मैं आज उसका कुछ सिखलाना — रोना-धोना करना सब निकाल दूँगी।"

"निकाल देना। वह औरत जैसी है, वैसा ही करना सुन कर जाना।"

"तो जरूर जाऊँगी। अच्छा वह मन्तर-तन्तर भी कुछ जानती है?"

"मन्तर-तन्तर! सुनती हूँ, 'कामरू कमच्छा' से सीख आई है। मनुष्यको भेड़ा बनाकर रख सकती है। जैसे इन बाबूको बना रखा है—उठनेको कहती है तो उठते हैं, बैठनेको कहती है तो बैठते हैं।"

बनाकी माका मुख कुछ विवर्ण हो गया — फीका पड़ गया। सूखे हुए मुखसे बोली—वो मन्तर-तन्तर मैं भी जानती हूँ।

"जानोगी क्यों नहीं! खैर, आज दो पहरके वक्त जब आवेगी तब, तब तुम्हें मैं दिखा दूँगी।

"बान (मूठ) मारना जानती है?"

"जानती क्यों नहीं!"

"कब आयगी?"

"कहा तो, दो पहरको!"

बनाकी माने झाँककर खिड़कीसे बाहरकी ओर देखा। जान पड़ा, दोपहर होनेमें अधिक देर नहीं है। कुछ इधर उधर करके बोली — लेकिन आज मुझे बहुत-सा काम करना है—आज जाती हूँ, कल आऊँगी।

बनाकी मा उठकर खड़ी हो गई।

"ना, ना, आज यहीं खा-पीकर जाइए।"

"बड़ी देर हो जायगी।"

"कुछ भी देर न होगी।"

"तो फिर जल्दीसे लाकर दे दे बेटी।—तुम्हारा नाम क्या है बेटी?"

"मेरा नाम मालती है।"

"अहा, बहुत अच्छा नाम है।"

इसके बाद बनाकी माने जीभर आकर पढ़कर कुछ खा-पी लिया। मालती पास ही बैठी थी। उसने देखा कि बनाकी माका खाना वैसा सुभीतेका नहीं हुआ। अन्तमें हँसकर कहा—अब जाती हूँ बेटी।

"माँ, एक बात अभी आपसे कहनेको बाकी है। बच्चा दीदीसे मैंने दस रुपये उधार लिए थे। वह तो यहाँ नहीं। अब आप अगर दया करके मुझे दस रुपये दे दें तो बड़ी कृपा करेंगी।"

बच्चेकी माकी समझमें बात कुछ अच्छी तरह नहीं आई। बोली—क्या करूँ?

"वह दस रुपये आप ले लें।"

"मुझे तुम दोगी?"

"हाँ।"

मालतीने उसके दस रुपये लाकर बुढ़ियाके हाथमें रख दिए।

बच्चेकी मा बहुत देर तक मालतीका मुँह ताकती रही। उसके बाद धीरे धीरे बोली—बेटी, तुम निश्चय ही मेरे बच्चेकी [illegible] हो।

मालतीने मुसकराकर कहा—हम दुखी बहन हैं।

बच्चेकी माँकी आँखोंके कोनोंमें जल भर आया। बोली—सो रहा। [illegible] तू मन छोटी करके न रहती—वह देख न ले—मैं सब बात ही कहूँगी—मेरी बच्चेके हाथमें दस रुपये दे; लेकिन उसने भी समझकर दस रुपये इसने कभी इस तरह हाथ उठाकर मुझे नहीं दिये।

बच्चेकी माने आँचल अपनी आँखें पोंछीं।

मालती—हम दुखी गरीब आदमी हैं, लेकिन [illegible] है।

बुढ़िया—है, लेकिन क्या सभी लोग यह खयाल रखते हैं?

"[illegible] न रखें। हाँ, तो कल आओगी न?"

"हाँ—आऊँगी क्यों नहीं।"

"तो फिर मैं आज क्या अपनी [illegible] लिख कर रखूँ?"

"हाँ—आ—नहीं—इसके कहनेकी कोई जरूरत नहीं।"

[illegible] सीखी हुई बातूनी [illegible] बच्चेकी माके मनमें [illegible] पैदा कर रहा था, यह बात मालती समझ गई थी।

बच्चेकी माका मुँह उतर गया था। उसने कहा—[illegible] तो अब जाती हूँ—[illegible] दिनमें तो एक बार आना होगी।

"अच्छा आऊँगी।"

१३

अपनी माके आनेका यह वृत्तान्त सुनकर सुरेन्द्रनाथ खूब हँसे। बोले— तुमसे उसका खूब झगड़ा हो गया?

मालतीने कहा— झगड़ा क्यों होता, बल्कि खूब मेल ही गया।

"तो तुमने उससे मेल कर लिया?

"हाँ, कर लिया है।"

"लेकिन अपनी लड़कीसे उसकी कभी नहीं पटती थी। हमेशा अनबन रही—झगड़ा होता रहा।"

"तो सुन चुकी हूँ।"

"किस तरह?"

"उसने आप ही मनके दुःखसे मुझसे कुछ कुछ कह डाला।"

लेकिन मनके दुःखका कारण मालतीने खोलकर नहीं कहा।

"पहले ही घरमें घुसकर शायद उसने तुमको खूब गालियाँ दी थीं?"

मालतीने हँसकर कहा—मुझे नहीं दीं। जिस कारणसे तुम कलकत्तेसे चले आये हो, उसीको दी थीं।

"वह कारण तो तुम्हीं हो।"

"मैं क्यों होने लगी? मैं तो कलकत्तेमें आई नहीं।"

"इससे क्या, हो तो तुम्हीं।"

"मुझे वह पहचान ही नहीं पाई। एक दासी समझ लिया था।"

सुरेन्द्रने कुछ कुण्ठित भावसे कहा—इसके सिवा और लोग क्या समझ सकते हैं?

मालती—मैं भी इसीलिए कब गई नहीं जान पड़ता है, समूचा न लगी कुछ।

"मगर दासी क्या?"

"जान तो ऐसा ही पड़ता है।"

"इसके बाद क्या हुआ?"

"मैंने कहा कि वह आधानिन यहाँ नहीं है। इस पर बोली—उसे आने दो, आते ही सब जानूँगी।"

सुरेन्द्रनाथ हँसने लगे।

मालती—फिर पूछा कि उसने तुमसे कुछ सिखा तो नहीं दिया? मैंने कहा, जान तो पड़ता है कि कुछ सिखा दिया है, नहीं तो उसके कहनेसे उठते-बैठते क्यों हैं?

"मैं क्या नहीं करता हूँ?"

"करते नहीं?"

"अच्छा वह रहने दो।—फिर उसके बाद?"

मालती—उसके बाद उसने पूछा कि वह मन्तर-तन्तर कुछ जानती है कि नहीं। मैंने कहा—खूब जानती है, सुनती हूँ, कामरूपसे सीख आई है। तब बोली—मैं भी जानती हूँ। लेकिन मैं समझ गई कि बुढ़िया मन ही मन डर गई है। फिर उसने पूछा कि क्या वह बान (मूठ) मार सकती है? मैंने कहा—हाँ, मार सकती है।

अबकी सुरेन्द्र बाबू खूब जोरसे हँस पड़े।

"तब शायद भाग गई?"

"हाँ।"

"और कभी यहाँ नहीं आवेगी?"

"आवेगी क्यों नहीं, लेकिन तुम्हारी उस बागनके पास नहीं आवेगी—अन्त समय तो मर कर आवेगी।"

"जिसके पास उसका जी चाहे जावे, लेकिन तुम अब मेरे पास आओ।"

मालतीके पास आनेपर उसके दोनों हाथ पकड़कर सुरेन्द्रने कहा—मालती, अब और कितने दिन इस तरह छिपाओगी? तुम्हारा ऐसा रूप आँखोंसे अब देखा नहीं जाता।

मालतीने होठोंमें दबी हँसी हँसकर कहा—गहने पहननेसे क्या रूप बढ़ जायगा?

"तुम्हारे रूपकी सीमा नहीं है। जिसकी सीमा नहीं, उसे बढ़ाया नहीं जा सकता। लेकिन अपना मन भरनेके लिए भी—

"पहने पहनने होंगे ?"

"हाँ।"

मालती—मैं पहन सकती हूँ, लेकिन पहले यह बताओ कि मुझे गहने पहनानेकी तुम्हें इतनी जिद क्यों है ?

सुरेन्द्र० अगर बता दूँ तो मनमें दुखी तो न हो जाओगी ?

मालती—बिलकुल नहीं।

सुरेन्द्र—अच्छा तो बताता हूँ, सुनो; तुम्हारी यह निराभरण मूर्ति बड़ी ज्योतिर्मयी है—उसे देख कर भी कभी-कभी जैसे एक सन्देह मनमें आ जाता है—देखते ही जान पड़ता है जैसे मेरे पास ठीक तुम्हारी ही तरह तरासर-सा हाथ छूट पड़ते हैं। तुमसे क्या कहूँ, तुम्हारे पास बैठा रहता हूँ, किन्तु कोई एक अलखना मन मुझे किसी तरह नहीं छोड़ता—ऐसा लगता है। मैं वैसा सुख नहीं पाता, जैसे तुममें हिल-मिल नहीं सकता। इसीसे गहने पहनाकर तुम्हें कुछ मलिन कर दूँगा।

मालतीने मुस्कराकर अपने उन अंगोंपर दृष्टि डाली—सामने बड़े दर्पणमें पूर्ण प्रतिबिम्ब देख पड़ रहा था, वह भी देखा। उसे लगा, जैसे वह यथार्थमें ही बड़ी उज्ज्वल है—बड़ी ज्योतिर्मयी है। उसे ध्यान, जैसे पुष्पकी अम्लान स्मृति अब भी शायद उसकी देहको छोड़कर गई नहीं; पवित्रताकी छाया अब भी उस देहपर कुछ कुछ मौजूद है। एकाएक, सहसा निष्कारण अनुरागसे मालतीके कुछ भ्रम उत्पन्न हुआ। उसने देखा, सामने दर्पणमें एक प्रतिबिम्बित देवमूर्ति है और उसकी आँखोंमें जीवनके आराध्य सुरेन्द्रनाथकी निष्कलङ्क देवमूर्ति है।

विस्मय और आनन्दसे मालतीने आँखें मूँद लीं।

दूसरे दिन ठीक सन्ध्याके बाद सुरेन्द्रनाथ मोहन लालस्थेडसे मालतीके कमरेमें दिखाई दिए। उनके फूलोंके गहने—जूही, बेला, बकुल, कामिनी आदि फूलोंकी देहसे सर मालामें गलेसे छाती तक पड़ी है। एक हाथमें गुलदस्ता और दूसरे हाथमें मखमलसे मढ़ा एक सुन्दर सुगठित छोटा-सा एक गहनेका बक्स है। देहपर गेरुआ वस्त्र और रेशमी धोती है, पैरोंमें वार्निशके जूते। हँसते हँसते एकदम मालतीके सामने आकर खड़े हो गये। उनका वेशभूषा-गहनोंको देखकर मालती हँसकर बोली—आज यह क्या है ?

सुरेन्द्र०—इसमें भय क्या है ?

"सो तो मैं नहीं जानती।"

सुरेन्द्रनाथ बनावटी गम्भीरता मुँहपर लाकर बोले—तुम पूजा करती हो?

"करती हूँ।"

"तो तुम्हारे घरमें चन्दन है? चन्दन लाकर मुझे लगा दो—आज मेरा ब्याह है।"

"किसका ब्याह?"

"पहले लगाओ, उसके बाद सुन लेना।"

मालती चीपकर चन्दन घिस लाई और सुरेन्द्रनाथको अच्छी तरह सजाकर बोली—अब बताओ।

"यह क्या अब भी नहीं समझ पाई?"

इसके बाद गलेमें फूलोंकी मालाएँ लिपटाकर एकके बाद एक मालतीको पहनाई गईं। उसके हाथ-पाँव आभूषण लिपटाकर यथास्थान जतन पहनाये। मालतीने जन्ममें कभी वैसी चीजें नहीं देखी थीं। वह विस्मित होकर उन्हें देखने लगी। तब समाप्त करके चुम्बन-चुम्बन करके सुरेन्द्र बहुले कहा—तुमसे ब्याह कर लिया। इतने दिनोंमें आज तुम मेरी बहू हुई। अब तुम कहीं भाग नहीं सकोगी। ये माला आज मैंने पहनाई हैं उनके बन्धनको जन्म-जन्मान्तरमें भी तुम तोड़ नहीं सकोगी।

दोनोंहीकी आँखोंमें आँसू आ गये, दोनों ही कुछ देर तक बोल नहीं सके, इसके बाद मालतीके आँसू पोंछकर सुरेन्द्रनाथने कहा—अब घर चलो, अपनी पहली बार समझ लो—आशीर्वाद देता हूँ, इस जीवनमें सदा सुखी रहो।

मालती सुरेन्द्रको प्रणाम करके फिर उनके पास बैठी। आज उसकी आँखोंमें आँसुओंकी झड़ी-सी आ गई है। सैकड़ों बार पोंछा, सैकड़ों बार आँसू भर आये। आँसू किसी तरह थमते ही न थे। सुरेन्द्रनाथ समझ गये। समझकर बोले—मालती, आज पिता-माताकी याद आ रही है?

मालतीने सिर हिलाकर कहा—हाँ।

सुरेन्द्रने कहा—इसमें ही, उसमें तुमने आज ही बाधा डाली। लेकिन अब इस तरह नहीं रहेगा। जब उनके पास है तब आखिर और घर आया

कहूँगा और फिर एक बार पहलेसा कहूँगा। तुम्हारे माता पिताको यहीं लाऊँगा। लोग चाहे जो कुछ कहें, मैं तो सुखी होऊँगा। (लम्बी साँस छोड़कर) यह भाग्य अब एक दुराशा है।

माधवीसे सुरेन्द्रने फिर पूछा—अब घर चलोगी?

माधवीने कहा—कहाँ?

"जहाँ तुम्हारा घर है—जहाँ मैं रहता हूँ।"

"वह क्या मेरा घर नहीं है?"

"तो क्या वहीं न जाओगी?"

"ना।"

"मैंने भी ठीक यही सोचा था।"

१४

दुःखके दिन देरसे बीतते हैं, यह सच है लेकिन बीत जाते हैं। रुके नहीं रहते। माधवकी मृत्युके बाद प्रमदाके दिन भी उसी तरह बीतने लगे और बहुत दिन बीत गये। उस समय वर्षाऋतु थी। आकाशमें बादल छाये थे, घर-बाहर कीचड़की किचकिच थी। अब उसके बदले शरत्काल आया है। न वे बादल हैं, न वह कीचड़की किचकिच है। घर-बाहर स्वच्छ है। कभी कभी दो-एक बादलके टुकड़े उद्देश्यहीन-से आकाशमें कहीं जाते आते देख पड़ते हैं। उस समय प्रमदाका मुख सदा म्लान रहता था, आँखोंमें नित्य आँसू रहते थे, नित्य उसका मुख मलिन रहता था। अब वह बात नहीं है। कभी कभी प्रमदाका वह मुख कुछ मलिन हो जाता है, दो-एक बूँद पानी भी आँखोंमें टपक आता है, किन्तु वह क्षण भरके लिए। प्रमदा तुरन्त आँसू पोंछकर फिर हँसने लगती है। अतीतकी स्मृतिसे मिले हुए दुःखकी आखिरी बदलीकी तरह आकाशके किसी अगम्य अनिर्देश्य कोनेसे प्रकृति गर्जन करके कभी कभी बरस तो उठती है किन्तु उसमें गहराई नहीं है। एक ही तरहका जीवन अच्छा नहीं लगता, इस बातको जैसे प्रकृतिदेवीने भी अब कुछ कुछ समझ लिया है। परिवर्तनके बिना संसार नहीं चलता, यह बात सभी समझते हैं, समझता नहीं है केवल प्रमदाका उन्नत कर्तव्याकर्तव्य बालिका। जबसे वह पैदा हुई तबसे अबतक। प्रमदा इस बातको मनमें विचार कर देखती है—और

देखता है ज्ञानमय पावनती। मोहल्लेके चार आदमी देखते हैं—झुमरा घाटसे नहाकर आ रही है, पानी-भरी कलसी कमरपर रखे और गम्भीर गतिसे चली आ रही है। घरके काम-काज करती है किन्तु नित्य मौन, नित्य विषादमयी। बूढ़ियाँ कहती हैं—छोकरी अब बचेगी नहीं—आह! हमजोलियाँ कहती हैं—ऐसी तकदीर शत्रुकी भी न हो—आह!

पीछे 'आह आह' सभी करते हैं; किन्तु सामने यह कहनेमें उन्हें लज्जा मालूम होती है। सभी कैसे यह समझते हैं कि यह 'आह' झुमराके सम्बन्धमें ठीक नहीं लगता। और एक कोई शब्द—जो भाषामें नहीं है, जिसका किसीने प्रयोग नहीं किया—ऐसा एक शब्द अगर कहीं मिले, तो वह कहनेके लायक हुआ होता। इसीसे कोई कुछ नहीं कहता। झुमराके आनेपर चुप हो जाते हैं। स्नान करते समय गंगाके घाटपर छोटे-बड़े पानी उछालते हैं, शोर-गुल करते हैं, हँसते-दूसरे मोहल्लोंके शिशुओंके मन क्षुब्ध देते हैं, इसी तरह अनेक उत्पात करते हैं। किन्तु झुमरा जब चुपचाप घाटके सबसे अन्तिम पत्थर कलसी रखकर निराकुल मन्थर गति चाहिनी की तरह धीरे-धीरे जब पानीमें उतरती है, तब वे समाज-शासित भी समझ जाते हैं कि अब उपद्रव और शोर-गुल न करना चाहिए, पानी नहीं उछालना चाहिए, अब चुप होकर शान्त-स्थिर होकर अपनी मांके या और किसी अपने आदमीके आँचलको पकड़कर खड़े रहना चाहिए। झुमरा नहा-धोकर जब ऊपर चली जाती है, तब भी बच्चोंमें वह चपलता कभी नहीं लौट पाता।

झुमरा हँसना मानो भूल-सी गई है, इतनी विरक्ति हो गई है, कुछ कहना भी भूल गई है। देखनेसे लगता है। वह अब पुरानी धरोहर विचार या उसकी आलोचना मालूम बन्द हो गई है। यह आजकल अपूर्व स्वप्न-सा हो गया है। उसका अपनी मांका। वे यह आजकल 'अच्छे लड़के' बन गये हैं। नित्य दोनों वक्त घर आते हैं, तो अपने चार आने पढ़ाईकी तरह झुमराके घर आकर नैन ले जाते हैं, फिर चले जाते हैं। झुमरा सारी दोपहर रसोईघरके पासपर देहलीपर बैठकर किसी सोच-विचार नहीं करती है। सन्ध्या होनेपर फिर उठती है, घाटपर जाती है, दीया जलाती है, रसोई बनाती है—मन करके एक कामीमें अब

परोसकर स्वामीके लिए रख देती है, सदानन्दको भोजन कराती है। फिर सवेरा होता है, फिर दोपहर तीसरा पहर होता है, फिर रात आती है।

नित्य जैसा होता है वैसे ही आज भी शुभदा दोपहरके बाद रसोईघरमें बैठी हुई थी। बाहर मर्दानी आवाजमें किसीने पुकारा—माजी!

शुभदाने सुना जरूर, लेकिन बोली नहीं। सोचा, शायद और किसीको कोई पुकार रहा है।

उस आदमीने फिर पुकारा—अजी ओ माजी!—कोई घरमें है?

शुभदा अबकी उठकर बाहर आई। बोली—कौन है?

उस आदमीने कहा—मैं डाकिया हूँ। चिट्ठी है।

शुभदाको बड़ा विस्मय हुआ। चिट्ठी कौन लिखेगा! पास आकर बोली—लाओ।

डाकियेने कहा—इस तरह नहीं मिलेगी माजी! यह रजिस्ट्री चिट्ठी है—शुभदा देवीके नाम। उनको दस्तखत करने होंगे।

शुभदा रजिस्ट्रीका अर्थ अच्छी तरह समझ नहीं पाई। बोली—लाओ, मेरा ही नाम शुभदा है।

डाकियेने चिट्ठी निकाली, अपना रसीदका कागज निकालकर दिया और कहा—इसपर सही कर दीजिए।

शुभदा लिखना जानती थी। बोली—कलम-दावात लाओ।

डाकियेने शुभदाके मुखकी ओर देखकर जरा हँसकर कहा—कलम-दावात मैं कहाँ पाऊँ मा! आपका घर है। घरमें कलम-दावात नहीं है क्या!

शुभदाने कहा—देखती हूँ।

ऊपर-नीचे सब खोजनेपर उसे छलनाकी एक आधी टूटी दवात मिली। स्याही सूख गई थी। पानी डालकर किसी तरह लिखने लायक स्याही बना ली। किन्तु कलम कहाँ है?

एकाएक शुभदाको माधवके कलमका खयाल आया। ऊपरके कोठेमें एक कोनेमें एक छोटी चौकीके ऊपर बैठकर माधव और छलना पढ़ने लिखनेका अभ्यास करते थे। छलना उन्हें पढ़ाती थी। शुभदाने ऊपर आकर देखा—एक कोनेमें उसी चौकीके ऊपर वैसे ही एक छोटेसे स्याहीसे सने वस्त्र-खण्डमें बँधा हुआ माधवका कलम पड़ा है। शुभदा इधर बहुत दिनोंसे आई न थी।

बहुत दिनोंसे इस ओर देखा नहीं था, यह ललनाकी कोठरी थी। ललनाके मरनेके बाद आज पहली बार शुभदा इस कोठरीमें आई। माधवका बस्ता हाथमें लेकर धीरे धीरे शुभदाने उसको खोला। उसमें एक टूटी स्लेट, एक आधी रीडर, अंकगणित, दो किलककी कलम, एक टूटी सेंठेकी कलम, छोटी छोटी दो स्लेट-पेन्सिलें पुराने कागजोंमें काटी गई चार-पाँच तसवीरें थीं। शुभदाकी आँखोंसे एक बड़ी-सी आँसूकी बूँद स्लेटके ऊपर गिर पड़ी। एक कपड़ा लेकर शुभदाने यह सब सामान यत्नसे सँभालकर बाँधकर रख दिया। कारण, वह जानती थी कि इन सबको माधव बड़े यत्नसे रखता था।

नीचे आकर शुभदाने चिट्ठी ले ली। कमरेके भीतर जाकर खोला तो उसके भीतर एक पचास रुपयेका नोट निकला। निश्चय ही गलती हुई है। डाकियेको पुकारनेके लिए वह लपककर बाहर आई; लेकिन वह तबतक चला गया था। गाँवकी बहू ठहरी, चिल्लाकर पुकार नहीं सकी। इसीसे नोट लिए लौट आई। शुभदाने सोचा था, कुछ देर बाद डाकिया अपनी गलती समझ पानेपर आप ही लौटकर आवेगा। लेकिन वह नहीं आया। तब शुभदाने यह बात सदानन्दसे कही। सदानन्दने देख सुनकर कहा—गलती नहीं हुई। इस गाँवमें शुभदा नामकी और कोई नहीं है। साफ लिखा है, हारान मुकर्जीके घरमें। तब तो यह आपहीकी है। लेकिन कलकत्तेमें आपका कौन है?

शुभदाने कहा—कलकत्तेमें मेरा कोई नहीं है।

दूसरे दिन सदानन्दने डाकघर जाकर पता लगाया तो मालूम हुआ—अघोरनाथ बसु महाशयने कलकत्तेसे ये रुपये भेजे हैं।

शुभदाने विस्मित होकर कहा—इस नामके किसी आदमीको मैं तो नहीं पहचानती।

"फिर?"

"तुम कोई उपाय करो।"

सदानन्दने हँसकर कहा—उपाय और क्या करूँगा? रुपये अगर न रखना चाहें तो लौटा दीजिए।

शुभदाने कहा—भैया, जब बाल-बच्चोंके साथ खानेको नहीं जुटता था, तब भी शायद ये रुपये मैं नहीं लेती। अब मुझे कौन दुःख है, जो मैं रुपये लूँ? ये मेरे रुपये नहीं हैं। तुम वापस कर दो।

सोच-विचारकर सदानन्दने कहा—मैं कलकत्ते जाकर पता लगाऊँगा। ये रुपए अभी अपने पास रख लीजिए। अगर लौटा देनेको हुआ तो लौटा दूँगा।

शुभदाने कहा—तुम रुपए साथ लेते जाओ—इसमें भला-बुरा कुछ नहीं है—एकबारगी लौटा ही आओ। सम्भव है, उन्होंने और किसीके बदले गलतीसे मुझे भेज दिये हों।

" ख़ैर, जो कुछ होगा, वहीं जाकर ठीक करूँगा। "

" यही करो। "

१५

अपने बड़े-से दफ़्तरमें वकील अघोरनाथ बाबू बैठे हैं। और सामने टेबिलके दूसरी ओर मालपतपुरके ज़मींदार सुरेन्द्रनाथ बाबू हैं। टेबिलके ऊपर मुकदमेके कागज़ोंका ढेर है। व्यस्त भावसे दोनों जने उसीमें लगे हैं।

कुछ देर बाद सिर उठाकर सुरेन्द्र बाबूने कहा—अघोर बाबू, जान पड़ता है, यह मुकदमा मैं नहीं जीत सकूँगा।

" अभी कुछ भी नहीं कहा जा सकता। "

" अच्छी तरह कहा जा सकता है। मैंने ठीक समझा है, मुकदमा हारना ही होगा। "

" लेकिन हाईकोर्टके ऊपर भी तो है? "

" है, लेकिन वहाँ तक जानेकी इच्छा नहीं है। "

" तो क्या मालपुरकी जायदाद छोड़ दीजियेगा? "

" न छोड़नेका और उपाय क्या है? "

" आपकी आमदनी बहुत घट जायगी। "

" हाँ, लगभग आधी रह जायगी। "

अघोर बाबू चुप हो रहे। मन-ही-मन बहुत विरक्त हो गये थे। क्योंकि उन्होंने भी समझ लिया था कि सुरेन्द्रनाथका अनुमान ही अन्ततक सत्य होगा। इसी समय एक नौकरने आकर कहा—बाहर एक आदमी खड़े हैं, आपसे मिलना चाहते हैं।

अघोर बाबूने उसकी ओर ताककर पूछा—कौन है?

"नहीं जानता। देखनेसे जान पड़ता है कि कोई ब्राह्मण पण्डित हैं।"

"तो जाकर कह दे, इस समय मुझे फुर्सत नहीं है।"

कुछ देर बाद नौकरने फिर आकर कहा—वह जाना नहीं चाहते, कहते हैं बड़ा जरूरी काम है।

अघोर बाबू और अधिक खीझ उठे। किन्तु सुरेन्द्र बाबूकी ओर देखकर बोले—क्या नहीं कुछ है?"

"हर्ज क्या है?"

अघोर बाबूने नौकरको वैसी ही आज्ञा दी। कुछ देर बाद एक लम्बे डीलडौलके गोरे रंगके ब्राह्मण आकर उपस्थित हुए। गलेमें जनेऊ, खोपड़ीपर शिखा, लेकिन माथेपर तिलक, बिन्दी आदि कुछ भी नहीं। बदनमें चादर ओढ़े और बिना किनारीकी मोटी धोती पहने। पैरोंमें जूता नहीं। घुटनोंतक धूल भरी हुई। सुरेन्द्र और अघोर बाबू दोनोंने उनको देखा। अघोर बाबूने कहा—बैठिए।

ब्राह्मण पास ही एक कुर्सीपर बैठकर बोले—वकील बाबू अघोरनाथ बाबू—

"मेरा ही नाम अघोरनाथ है। कहिए?"

"तो फिर आपहीसे काम है। जो कहना है वह क्या यहीं कह सकता हूँ?"

"बेखटके कहिए।"

तब ब्राह्मणने चादरके खूँटसे एक कागज खोलकर कहा—यह नोटिस क्या शुभदा देवीके नाम आपने ही भेजा था?

अघोर बाबूने नोटिसको उलट-पलटकर देखनेके बाद कहा—हाँ, मैंने ही भेजा था।

ब्राह्मणने विस्मित होकर कहा—हलुदपुरके हारानमुकर्जीके घरमें शुभदा देवीको?

"जी हाँ, बिल्कुल ठीक।"

"यह नोटिस क्यों भेजे थे?"

"मालिककी आज्ञा थी।"

"मालिक कौन है?"

अघोर बाबूने सुरेन्द्र बाबूकी ओर कनखियोंसे जरा देखा, फिर कहा—यह बतानेकी मनाही है।

"तो ये रुपए फेर लीजिए। जिन्हें आपने भेजे थे, वे नहीं लेंगी, आपको वे नहीं जानतीं और सम्भवतः आपके मालिकको भी वह नहीं जानतीं-पहचानतीं। उन्होंने मुझे यहाँ पता लगाकर रुपए लौटा देनेके लिए भेजा है। हम लोगोंने समझा था कि आपने शायद गलतीसे एक जनेके नामकी जगह दूसरे जनेका नाम पढ़के लिख दिया है।"

अघोर बाबू हँसे। बोले—ऐसी गलती वकील लोग नहीं कर सकते।

"न सही, लेकिन हम अब आप वापस ले लीजिए।"

"यह भी नहीं कर सकता—मालिककी आज्ञाके बिना कुछ भी नहीं करूँगा।"

तो फिर उनसे पूछकर खबर दीजिएगा, मैं और दिन आकर दे जाऊँगा।"

ब्राह्मण उठ रहे थे, किन्तु सुरेन्द्र आपहीसे पूछ बैठे—महाशयका नाम?

"मेरा नाम सदानन्द चक्रवर्ती है।"

सुरेन्द्रनाथ चौंक पड़े। कुछ देर तक सदानन्दकी ओर ताकते रहकर बोले—आप यहाँ कहाँ ठहरे हैं?

"कहाँ ठहरूँगा, यह कुछ अभी तय नहीं किया। यहीं चला आया था और सम्भवतः आज ही लौट जाऊँगा।"

सुरेन्द्रनाथने अघोर बाबूसे कहा—अभी चलता हूँ, रातको फिर आऊँगा। इसके उपरान्त सदानन्दकी ओर देखकर बोले—आपसे मुझे कुछ कहना है।

"कहिए।"

"यहाँ नहीं। मेरा डेरा पास ही है। आपको अगर कुछ आपत्ति न हो तो चलिए, वहीं चलें—वहीं सब कहूँगा।"

सदानन्दको इसमें आपत्ति नहीं थी। तब दोनों चले आकर गाड़ीपर बैठे। बैठनेके बाद सदानन्दने कहा—इसके पहले आपको कभी देखा हो, ऐसा नहीं जान पड़ता—लेकिन, आपने क्या कभी कहीं मुझे देखा था?

"नहीं, नहीं देखा। लेकिन आपको जानता हूँ।"

"कैसे?"

"डेरेपर चलिए—वहीं कहूँगा।"

थोड़ी ही देरमें गाड़ी डेरेपर पहुँच गई। सुरेन्द्र बाबूने कहा—मैं भी ब्राह्मण हूँ, बेला भी अधिक हो गई है—आप यहीं भोजन करें तो हानि है क्या?

"कुछ नहीं।"

इसके बाद खाना-पीना खतम करके दोनों बने बैठे। तब सुरेन्द्र बाबूने पूछा—शुभदा देवी गरीब नहीं हैं क्या?

"गरीब जरूर है। लेकिन इसीलिए क्या—"

"समझ गया। इसलिए दान क्यों लेंगी? यही न?"

"हाँ, कुछ कुछ यही बात है। जानकर दाताका नाम तक मालूम न हो सके—"

"लेकिन इसमें हानि क्या है? जिसने दिया है, वह कह रहा है कि इसमें सूद या अहसानकी कुछ नहीं है। अच्छे आदमीको ही दिया गया है।"

"किसने दान किया है?"

"मान लीजिए, अधीर बाबूने ही—"

"अधीर बाबूको क्या अधिकार है?"

सुरेन्द्र बाबूने कुछ अन्यमनस्क होकर कहा—लेकिन दान करनेका तो सभीको अधिकार होता है।

"हो सकता है; लेकिन उस दानको क्या सभी ग्रहण करते हैं?"

"नहीं करते। लेकिन जिसका नहीं चलता है वह?"

सदानन्द कुछ खीझ उठा। बोला—शुभदा देवीका ऐसी भिक्षा न लेनेसे भी चल सकता है।

"शायद आजकल चल रहा है लेकिन कुछ दिन पहले चलता था क्या?"

"इस बातसे मतलब क्या है? और आपने इतना जाना किस तरह?"

"मैं बहुत-सी बातें जानता हूँ। हारान बाबू कुछ कमाते-धमाते नहीं। उन पर तरह-तरहके दोष भी हैं। जो अपना स्त्री-पुत्र-परिवारका पालन नहीं करता, उसकी गृहस्थी क्या दूसरोंकी सहायताके बिना चल सकती है?

सदानन्द कुछ गम्भीरसे पड़ गया। इस समय तत्काल कोई उत्तर न दे पाया। सुरेन्द्र बाबूने फिर पूछा—हारान बाबू आजकल क्या करते हैं?

"कुछ नहीं।"

"अच्छा! तो फिर आपकी सहायतासे क्या उनकी गृहस्थीका काम चलता है?"

"भगवान् सहायता करते हैं। मैं तो स्वयं गरीब हूँ।"

"सन्ध्याका समय हो गया?"

"हो गया।"

"कहाँ? किसके साथ?"

"हमारे गाँवके ही लड़के—शारदाचरण रायके साथ।"

"मायका अब कैसा है?"

"वह नहीं बचा; उसको मरे अरसा हुआ।

"आह!—अच्छा उनकी बड़ी लड़की अब कहाँ है?"

दयानन्दने शिथिल होकर कहा—क्योंकि क्या मानें? वह भी तो नहीं बची।"

"बची नहीं? कैसे मर गई?"

"गंगामें डूबकर आत्महत्या कर ली।"

"यह कैसे जाना? क्या उसकी लाश पाई गई थी?"

"उसकी लाश पानीके ऊपर नहीं आई; लेकिन उसके पहननेकी धोती गंगाके किनारे मिली थी—इसीसे मालूम हुआ कि उसने अपनी जान दे दी है।"

"इस बारेमें अब किसीको सन्देह नहीं है?"

"नहीं।"

कुछ देर दोनों ही जने चुप रहे। उसके बाद सुरेन्द्रनाथ बोले—अच्छा मान लीजिए, ये रुपए अगर उसीने भेजे हों?

"किसने, ललनाने?"

"ललना कौन? उसका नाम क्या ललना था?"

"हाँ।"

"मैं भूल गया था। ठीक है, ललना ही था। ललना और छलना दो बहनें थीं—क्यों न?"

"हाँ।"

"अगर मान लीजिए, अगर उसीने ये रुपए भेजे हों।"

"जो मर गई है, उसने?"

'हाँ, उसीने। गंगाके किनारे उसकी धोती मिलनेसे ही उसके मरनेका निश्चय नहीं। अब अगर उसीने रुपए भेजे हों तो?"

दयानन्द बहुत विह्वल हो उठा। कुछ देर सिर थामे सोचता रहा। फिर बोला—वह जीवित नहीं है। जीती होती तो पत्र लिखती।

"पत्र लिखनेमें अगर उसे कष्ट मालूम हो ?"

"मैं ललनाको जानता हूँ। अभावका काम वह कभी न करेगी—जीवित रहकर कभी अपनेको नहीं छिपायेगी।"

"वह मरी नहीं जीवित है। उसीने रुपए भेजे हैं, और हर महीने भेजेगी।"

सदानन्दने अपना कपार दोनों हाथोंसे दबाकर कहा—आपका नाम ?

"सुरेन्द्रनाथ राय"

"निवास ?"

"नारायणपुर।"

"आपने हारान बाबू और उनके परिवारकी इतनी बातें किस तरह जानीं ?"

"ललनाने बताई हैं।"

"ललनाने नहीं बताईं। वह मर चुकी है।"

"मरी नहीं, सुखपूर्वक है।"

"वह स्वर्गको गई।"

सुरेन्द्रनाथ उसे रास्ता देख दिखाकर बोले—सदानन्द बाबू, और क्या चाहिए—

"मैं जाता हूँ—"

"और दो बातें—"

"अगर कभी भेंट हो तो कहियेगा—सदा दादाने उसे अनेक आशीर्वाद दिये हैं।"

"उसकी मालाको कहना—"

"कि स्वर्गको गई है।"

सदानन्द धीरे धीरे चला गया। फिर नहीं लौटा—फिर नहीं देखा।

उसके चले जाने पर सुरेन्द्रनाथ बहुत देरतक मौन निस्पन्द बैठे रहे। कुछ दिन पहले होता तो शायद सदानन्दके यों पागलपनेपर हँसते; किन्तु आज उनकी आँखोंके कोनोंमें आँसू भर आये। इसी समय बाहर नौकरने पुकारकर कहा, "बाबूजी गाड़ी तैयार करें ?"

१६

बहुत रात हो गई है, तथापि मालती अपने कमरेमें बैठी 'सीता वनवास' पढ़ रही है। बहुत रोई है, बहुत आँसू पोंछे हैं, तो भी पढ़ रही है। आहा! पुस्तक बहुत अच्छी बनाती है—छोड़नेको किसी तरह जी ही नहीं चाहता।

इसी समय बाहरके दरवाजेके पास खड़े होकर खूब मीठे गलेसे किसीने पुकारा—ललना!

मालती सुनकर सिहर उठी। सीता-वनवास पुस्तक हाथसे छूटकर गिर पड़ी।

"ललना!"

मालतीका हृदय भीतरसे काँप उठा। क्षीण कण्ठसे बोली—कौन है?

अबकी हँसते-हँसते सुरेन्द्रनाथने भीतर प्रवेश करके फिर पुकारा—ललना!

"तुम हो?"

"हाँ मैं हूँ। लेकिन अब तुम पकड़ी गईं। आजतक यह नाम कहीं सुना था तुमने?"

"नहीं।"

"फिर यही सही?" उसके सुन्दर होठोंमें चुम्बन अंकित करते हुए बोले, "मैं अभी सब सुन आया हूँ। ललना ही यहाँ मालती बन बैठी हो।"

"कहाँ सुना?"

"कलकत्तेमें।"

"कलकत्तेमें मुझे कौन जानता है?"

"वहाँ बेशक तुम्हें कोई नहीं जानता; जो जानता है, वह दक्षपुरसे आया था।"

"कौन आया था?"

"तुम्हारे सदानन्द दादा यह नोट लौटा देनेके लिए अधार बाबूके पास आये थे।"

"नोट फेर देनेको?"

"हाँ।"

"क्या दादा?"

"हाँ, यही।"

मालती चुप होकर बैठी रही।

कुछ देर बाद सुरेन्द्रनाथने कहा—चुप क्यों हो? पूछती क्यों नहीं?

"मेरे दादा कैसे हैं?"

"अच्छे हैं। तुम्हारी मा अच्छी तरह हैं। उनकी आर्थिक दशा अब बुरी नहीं है, तुम्हारा काम नहीं रुकी। ज्ञानानन्द बाबूने उनके दिन फेर दिये हैं।"

"मेरा नाम कल्पना है, यह तुमने कैसे जाना?"

"ज्ञानानन्दने ही बताया। वे सब लोग जानते हैं कि तुमने आगमें कूदकर प्राण दे दिये हैं।"

मालतीने चीख मारी।

"लेकिन मैंने कह दिया कि तुम जीवित हो और सुखमें हो।"

"यह क्यों कहा?"

"तो क्या झूठ बोलूँ? तुम जीवित भी हो, और मुझे जान पड़ता है, सुखी भी हो—सुखी नहीं हो क्या?"

"हूँ, लेकिन यह बात क्या ज्ञानानन्दने पूछी थी?"

"नहीं। मैंने आप ही कहा है, और तुम्हारी मासे भी यह बात कह देनेके लिए कह दिया है।"

"यह भी क्या कह दिया कि मैंने रुपए भेजे थे?"

"हाँ, कह दिया है।"

"तुम सब सत्यानाश करके आये हो। वह पागल है। गाँव भरमें चर्चा फैलेगा। अगर उनके लिए मैं मर ही गई थी तो फिर क्यों तुमने इसमें जाकर उन्हें बता दिया कि मैं जीवित हूँ?

सुरेन्द्रनाथ कुछ देर मौन बने रहे, फिर बोले—जिसे तुम पागल समझती थी वह तनिक भी पागल नहीं है। पागल कभी वह पागल रहा होगा किन्तु उसके वे दिन अब नहीं रहे। उसके द्वारा तुम इन्द्रपुरमें कभी लज्जित न होओगी। तुमने जो भरोसा किया गया है, वह वह कभी प्रकट नहीं करता।

"यह तुमने कैसे जाना?"

"मैंने जाना है। जब मैंने तुम्हारे जीवित रहनेकी बातका तुम्हारी माँको बतानेके लिए कहा, तब उसने कहा—कल्पना तुम्हारा नाम कभी नहीं

रामतारण भट्ट हल्दारकी दूकानकी चौखटपर पीठ टिकाये तमाखू पी रहे थे। पैरोंमें धूसरे सदानन्दको देखकर बोले—ओरे सदानन्द, चार-पाँच दिन इधर तुमको देखा नहीं—कहाँ था?

सदानन्दने लौटे बिना ही पीछेकी ओर उँगली उठाकर कहा—वहाँ।

"कहाँ? यमुनापाड़ामें?"

"हूँ।"

"इतने दिनतक?"

"हूँ।"

सदानन्द तेजीसे पैर रखता हुआ चलने लगा।

रामतारणने चीखकर कहा—चल् हरेकी! क्या कहता है, कुछ समझ ही नहीं पड़ता।

सदानन्दने यह सुना नहीं, या सुन ही नहीं पाया। वह सीधा शुभदाके पास आकर उपस्थित हुआ। नोट शुभदाके पास रखकर बोला—कुछ पता नहीं चला।

शुभदाने कहा—तो बेकार ही कष्ट पाया।

सदानन्द चुप रहा।

शुभदाने फिर कहा—तो फिर ये रुपये लेकर क्या करूँगी?

"आपकी जो इच्छा हो। आपकी इच्छा हो, रुपये लौटा दें, न हो रख लें। अगर कभी पता चले तो लौटा दीजियेगा।"

लाचार होकर शुभदाने नोट उठाकर बक्समें रख दिया।

सदानन्दने पूछा—हारानबाबू कहाँ हैं?

शुभदाने पासकी कोठरी दिखाकर कहा—सो रहे हैं।

"कहीं गये नहीं?"

"गये थे, अभी लौटकर आये हैं।"

उस दिन सन्ध्याके समय आँधी-पानीके आसार नजर आने लगे। शुभदाने जल्दी-जल्दी भोजन बना लिया। हारान बाबू खा-पीकर बोले—कुछ पैसे देना।

"आज अब कहीं न जाना। देखो, आकाशमें बादल घिरे हुए हैं। रातको अगर जोरका पानी बरसे तो?"

"बरसेगा तो क्या होगा?"

"लौटनेमें क्या होगा।"

"कुछ न होगा। मुझे जाना ही होगा। काम है।"

काम जो था, उसे घुमरा खूब जानती थी। तथापि उसने कहा—आज एकादशी है। उसपर नन्दजीकी तबियत खराब है—बेहोश पड़ी हैं।

हारानने कुछ नहीं सुना। देखते देखते खोलकर छाता सिरपर लगाकर, पैण्ट का दोनों जूते हाथमें लेकर, धोती कमरेपर खोंसकर पानी और कीचड़में ही घरसे निकल पड़े। घुमराने लम्बी साँस छोड़कर कहा—सबेरे नहीं आता!

उसने ठीक ही अनुमान किया था। पहरभर रात बीतते ही फिर जोरका पानी बरसने लगा। आजकल रात रातको घुमराको थोड़ा-थोड़ा बुखार हो आता था; किन्तु यह बात किसीसे कहना तो दूर, वह एक तरहसे अपनेसे भी छिपाती थी। रातको जब जाड़ा लगकर बुखार आता था तभी उसे उसका ख्याल आता था।

पानी बरसनेके साथ ही साथ उसे जाड़ा लगने लगा। हाथके पास उसने जो पाया, वही खींचकर अपने ऊपर डाल लिया। बहुत रात गये घुमराकी आँखें लगने लगीं। पानी तब भी बरस रहा था, लेकिन उसका जोर कम हो गया था। थके हुए सुप्त शरीरमें तन्द्राकी खुमारीमें घुमराको जान पड़ा, जैसे कोई दरवाजेके किवाड़ोंमें जो थोड़ी-सी संधि है, उसमें हाथ डालकर भीतरी साँकल खोल डालनेकी कोशिश कर रहा है। हठात् चार ही तरफ किवाड़ खुल गये। घरके भीतर दीपक जल रहा था। घुमराने आँखें खोलकर उसी प्रकाशमें देखा, एक आदमी कोठरीमें घुस रहा है। उसके हाथमें एक बाँसकी मोटी लाठी है। सारे शरीरमें स्याही पुती है और उसके ऊपर सफेद चूनेकी लकीरें हैं।

घुमरा सिहरकर चिल्ला उठी—अरे—यह कौन है।

उस आदमीने धमकानेके स्वरमें कहा—चुप!

उस वज्र-गम्भीर स्वरसे डरकर घुमराने आँखें मूँद लीं।

उस आदमीने दो बार ठक-ठक जमीनपर लाठी पटककर घुमराकी खाटके पास आकर कहा—मरने दमकी मामी है।

रूप देख और भारी था। एकाएक सुननेसे लगता था, यह आदमी जान बूझकर गला बदलके ऐसी मोटी आवाजमें बात कर रहा है।

सुमदा कुछ नहीं बोली ।

उस आदमीने फिर वैसे ही स्वरमें और एक बार फर्शपर लाठी ठोककर कहा—चाभी दे दे, नहीं तो गला घोटकर मार डालूँगा ।

अबकी सुमदा उठकर बैठ गई । तकियेके नीचेसे चाभियोंका गुच्छा निकाल-कर उस आदमीके सामने फेंक दिया और धीरे धीरे शान्त भावसे कहा—देखो, मेरे बड़े बक्समें दाहिनी तरफकी दराजमें एक पचास रुपयेका नोट रखा है, वही ले लो। बाईं तरफ विस्फोटकोंका प्रबन्ध रखा है, उसमें हाथ न लगाना ।

जैसे शान्त भावसे सुमदाने यह बात कही, उससे यह नहीं जान पड़ता था कि अब उसके मनमें रत्ती भर भी कोई भय है ।

चूना-स्याही लगाये हुए वह आदमी चाभी लेकर बड़े बक्सके पास गया और उसे खोल डाला । बाईं तरफ उसने बिलकुल हाथ नहीं डाला । दाहिनी ओरकी दराजमें पचास रुपयेका वह नोट लेकर उसने जेबमें खोंसा । सुमदाके कहनेके अनुसार उसने जैसे आसानीसे उस बक्सको खोला और दाहिनी ओरकी दराजका पता लगा लिया, उससे जान पड़ता है, जैसे यह सब उसका अच्छी तरह जाना-पहचाना था ।

यह सब जाने लगा, तब सुमदाने एक लम्बी साँस लेकर धीरे धीरे कहा—नोटमें शायद नाम लिखा है, नम्बर पड़े हैं । जरा सावधानीसे भुनाना ।

समाप्त

सुलभ साहित्यमाला

सबसे सुन्दर, सस्ती और उत्कृष्ट ग्रन्थमाला।

[मू० प्रत्येक भागका १।।) और प्रत्येककी पृ० सं० १६० के लगभग]

शरत् साहित्य

इस ग्रन्थमालामें भारतके सर्वश्रेष्ठ उपन्यास-कहानी-लेखक स्वर्गीय शरत्चन्द्र चट्टोपाध्यायके सम्पूर्ण साहित्यके अविकल शुद्ध और प्रामाणिक अनुवाद प्रकाशित किये गये हैं। इनमें मूलकी शैली और भावोंको सब तरहसे अक्षुण्ण रक्खा गया है और इनमें पाठकोंको मूल ग्रन्थोंके जैसा आनन्द आता है।

पहला भाग—सुमति (रामेर सुमति), पथनिर्देश और अनुपमाका प्रेम कहानियाँ। काशीनाथ, लघु उपन्यास।

दूसरा भाग—अन्धकारमें आलोक, कहानी। स्वामी और बैकुण्ठका दान-पत्र, दो छोटे उपन्यास।

तीसरा भाग—तसवीर (छवि) और दर्प-चूर्ण, कहानियां। चन्द्रनाथ उपन्यास।

चौथा भाग—श्रीकान्त प्रथम पर्व।

पाँचवाँ भाग—बाम्हनकी बेटी, मझोला उपन्यास। प्रकाश और छाया, विलासी, एकादशी बैरागी और बाल्यस्मृति, कहानियाँ।

छठा भाग—श्रीकान्त द्वितीय पर्व।

सातवाँ भाग—श्रीकान्त तृतीय पर्व।

आठवाँ भाग—बिन्दोका लल्ला, बोझा, मन्दिर, मुकदमेका नतीजा, हरिचरण, हरिलक्ष्मी और अभागिनीका स्वर्ग, ये सात कहानियाँ हैं।

नवाँ भाग—षोडशी नाटक और निष्कृति (छुटकारा) कहानी।

दसवाँ भाग—देवदास और बड़ी दीदी (बड़ दिदि) नामके दो मझले उपन्यास।

ग्यारहवाँ भाग—पण्डितजी (पण्डित मशाय) और मझली दीदी (मेज दिदि), उपन्यास।

बारहवाँ भाग—रमा नाटक और परिणीता छोटा उपन्यास।

तेरहवाँ-चौदहवाँ भाग—पथके दावेदार (अधिकार), क्रान्तिकारी उपन्यास।

पन्द्रहवाँ भाग—अनुराधा, मझेला और पारस, कहानियाँ और नारीका मूल्य, ८८ पृष्ठका विस्तृत निबन्ध।

सोलह सत्रहवाँ भाग—शरत्‌की अमर विजय-स्तम्भ, गृहदाह, उपन्यास।

अठारहवाँ भाग—दत्ता सामाजिक उपन्यास।

उन्नीसवाँ भाग—ग्रामीण समाज 'पल्ली समाज' नामक श्रेष्ठ उपन्यास।

बीसवाँ इक्कीसवाँ भाग—शेष प्रश्न। शरत् बाबूका अन्तिम और श्रेष्ठ उपन्यास।

बाईसवाँ भाग—श्रीकान्तका चतुर्थ पर्व।

तेईस-चौबीसवाँ भाग—विप्रदास उपन्यास, जिसमें 'सती' उच्च कोटिकी कहानी और तरुणोंका विद्रोह (निबन्ध)।

पचीसवाँ भाग—शरत्-पत्रावली। शरत् बाबूके लिखे सौसे अधिक पत्रोंका संग्रह।

छब्बीसवाँ भाग—जागरण, आगामी काल, भला बुरा, आनेकी आशायें और रसचक्र, अपूर्ण रचनायें। तीन उपन्यासोंके और दो कहानियोंके अंश जान पड़ते हैं।

सत्ताईस अट्ठाईस उन्तीसवाँ भाग—चरित्रहीन श्रेष्ठ उपन्यासोंमेंसे अन्यतम।

तीसवाँ भाग—विराज बहू और बचपनकी कहानियाँ। विराज बहू एक मार्मिक उपन्यास है। बचपनकी कहानियाँ बड़ी ही रोचक और उनी मानवीय करुणासे ओतप्रोत वो शरत्‌की प्रतिभा है।

इकत्तीसवाँ भाग——शरत्-निबन्धावली। साहित्य और स्वदेश सम्बन्धी चुने हुए २१ निबन्धोंका संग्रह।

बत्तीस तेतीसवाँ भाग—देना-पावना और नया विधान उपन्यास।

चौंतीस पैंतीसवाँ भाग—शेष परिचय शरत् बाबूका अन्तिम उपन्यास, जिसे श्रीमती राधारानी देवीने लिखकर पूर्ण किया।

छत्तीसवाँ भाग—शुभदा। शरत् बाबूका यह है तो सबसे पहले लिखा हुआ उपन्यास, परन्तु प्रकाशित हुआ है उनकी मृत्युके उपरान्त। वे इसे संशोधित परिवर्तित करना चाहते थे, पर नहीं कर सके।